* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

राम-रावण-युद्ध

वरदायिनी लक्ष्मीमाता

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
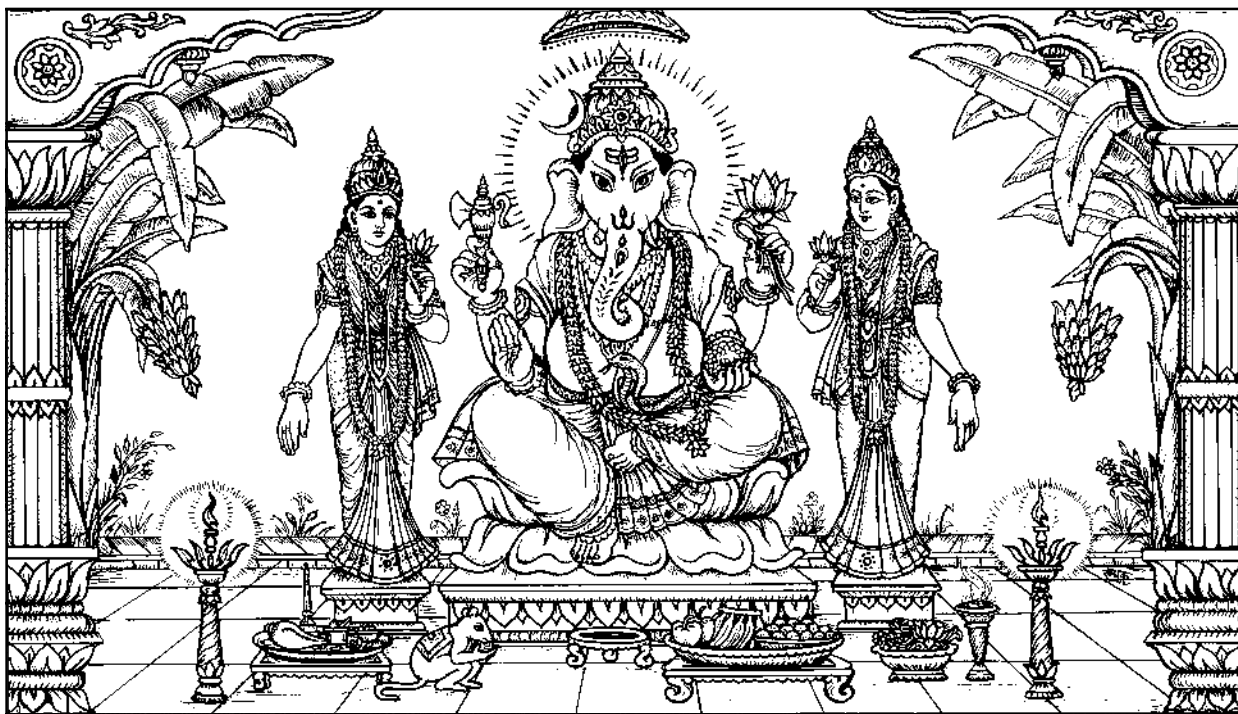
यतो वेदवाचो विकुण्ठा मनोभिः सदा नेति नेतीति यत्ता गृणन्ति।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

वर्ष ९५

गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, अक्टूबर २०२१ ई०

संख्या १०

पूर्ण संख्या ११३९

वरदायिनी लक्ष्मीमाता

पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे
पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।
विश्वप्रिये विष्णुमनोऽनुकूले
त्वत्पादपद्मं मयि सं नि धत्स्व॥

'कमल-सदृश मुखवाली! कमल-दलपर अपने चरणकमल रखनेवाली! कमलमें प्रीति रखनेवाली! कमल-दलके समान विशाल नेत्रोंवाली! समग्र संसारके लिये प्रिय! भगवान् विष्णुके मनके अनुकूल आचरण करनेवाली! आप अपने चरणकमलको मेरे हृदयमें स्थापित करें। [श्रीसूक्त १७]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, अक्टूबर २०२१ ई०, वर्ष ९५—अंक १०

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — **वार्षिक** US$ 50 (` 3,000) / **पंचवर्षीय** US$ 250 (` 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर निःशुल्क पढ़ें।

॥ श्रीहरिः ॥

शास्त्रोंका वचन है—

त्यक्तव्यो ममकारः त्यक्तुं यदि शक्यते नासौ।
कर्तव्यो ममकारः किन्तु स सर्वत्र कर्तव्यः॥

ममताका त्याग करना चाहिये, किंतु यदि यह सम्भव न हो सके तो ममता कर लेनी चाहिये। किंतु यह समानरूपसे सबके प्रति हो। यह बड़े महत्त्वकी बात है। हम कुछ प्राणी-पदार्थोंको अपना मानते हैं और कुछको दूसरोंका। इसीमें सारी खींचतान, आपाधापी और दुःख-क्लेश छिपा हुआ है।

यदि संसारकी असारताका ज्ञान साधन-भजन और भगवत्कृपासे उदित हो गया तो वैसे कल्याण है और यदि चित्तमें वैराग्य नहीं आ रहा तो सारे प्राणी-पदार्थोंको अपना ही समझकर उनके प्रति वही भाव और व्यवहार करना जो हम अपनोंके प्रति करते हैं, इससे भी उसी कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है; क्योंकि वस्तुतः तो सब परमात्मरूप ही है—वासुदेवः सर्वम्॥

—सम्पादक

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—जितना ही तुम ममताकी वस्तुओंको—'मेरी' कहलानेवाली वस्तुओंको बढ़ाओगे, उतनी ही तुम्हारी विपत्तियाँ बढ़ेंगी और उतने ही चिन्ता, विषाद, शोक और बन्धन बढ़ेंगे। जिनके जीवनमें ममताकी जितनी कम-से-कम वस्तु—कम-से-कम प्राणी हैं, उनका जीवन उतना ही विपत्तिरहित अतएव चिन्तारहित, शोक-विषादशून्य और बन्धनमुक्त है।

याद रखो—कोई भी वस्तु तुम्हारी नहीं है, सब भगवान्‌की है; अतएव जब भी कोई वस्तु यह कहे कि तुम उसको 'मेरी' मान लो, 'मेरी' बना लो, उसी समय तुरन्त उसे हटा दो और उसी समय उसे, वह जिसकी वस्तु है, उस परमात्माको सौंप दो। उसी क्षण मनके द्वारा उस अन्तर्यामी प्रभुसे कह दो—'नाथ! यह तुम्हारी वस्तु तुम्हारे अर्पण है, तुम्हीं इसके स्वामी हो, अपनी वस्तुको सँभालो।' इसके बाद फिर यदि वे कहें कि 'इस मेरी वस्तुको तुम सेवाके लिये अपने पास रखो, तो भगवान्‌की आज्ञा स्वीकार कर लो, पर उस वस्तुको ग्रहण करो—केवल प्रभुकी वस्तु मानकर उसकी यथायोग्य सेवा करने तथा उसे पूर्णरूपसे प्रभुकी सेवामें लगानेके लिये ही। उसको कभी 'मेरी' मत मानो, उसपर कभी ममताकी छाप मत लगाओ।

याद रखो—तुम जो यह चाहते हो कि 'मेरी' कहानेवाली वस्तुएँ सदा मुझे मिलती रहें, जगत्‌की बहुत-सारी अच्छी-अच्छी वस्तुएँ 'मेरी' हो जायँ, तो तुम बड़े भ्रममें हो और अपने ही हाथों अपनेको बड़े विकट जालमें फँसा रहे हो। तुम समझते तो हो कि जगत्‌की बहुत-सी वस्तुओंपर ममताकी मुहर लगनेसे मेरा जीवन निर्विघ्न और सुखी हो जायगा, पर सच तो यह है कि तुम्हारा जीवन बहुत अधिक विघ्नोंसे भर जायगा और सुखका स्वप्न भी तुम्हारे लिये दुर्लभ हो जायगा।

याद रखो—तुम जो अपने अध्यवसाय, परिश्रम, बुद्धिमत्ता, विद्या, प्रभाव और विविध इन्द्रियज्ञानका प्रयोग करके उनके द्वारा तथा भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना करके उसके द्वारा—संसारके भोग-पदार्थोंको 'मेरे' के घेरेमें लाकर जीवनको निर्बाध—विघ्नरहित तथा प्रचुर सुविधाओं एवं सहायकोंसे समन्वित बनाना चाहते हो, यह तुम्हारी भूल है। संसारके जितने ही अधिक प्राणि-पदार्थ तुम्हारे 'मेरे' के घेरेमें आयेंगे, उतना ही तुम बाधाओं और विघ्नोंसे घिर जाओगे, उतनी ही तुम्हारी सुख-सुविधाएँ छिन जायँगी एवं उतना ही तुम चारों ओरसे मानो सर्वस्व लूटनेवाले शत्रुओंसे घिरा अपनेको पाओगे। कितना मोह है—जो मनुष्य विघ्ननाशके लिये बार-बार नये-नये विघ्नोंको बुलाता है और जीवनको अधिकाधिक विघ्नसंकुल बनाकर अपने ही अज्ञानसे आप दुखी होता है।

याद रखो—'ममताकी मुहर' लगानेयोग्य कोई वस्तु है तो बस एकमात्र तुम्हारा अपना स्वरूप—आत्मा है अथवा तुम्हारे नित्य अकारण सुहृद्, सदा सहज सहायता करनेवाले भगवान्‌के श्रीचरणकमल हैं। उनमें ममता करो, एकमात्र उनको 'मेरा' बना लो। इन सुखकी मोहक पोशाक पहनकर आनेवाले दुःखोंमें—अमृतका मीठा स्वाद बनाकर आनेवाले महान् विषमें और अपनत्वकी नकाब लगाकर आनेवाले वैरियोंमें कभी ममता मत रखो—इन्हें मेरा मानो ही मत। जगत्‌के समस्त प्राणी-पदार्थोंसे ममता हटाकर एकमात्र भगवान्‌के चरणकमलोंको ही ममताके पात्र बना लो। अपने मनको 'अनन्य ममता' की सुमोहन सुमधुर सुकोमल; पर मजबूत डोरीसे उन श्रीचरणोंमें सदाके लिये बाँध दो। वे सुन्दर चरणकमल कभी न हटेंगे, न छूटेंगे, न मिटेंगे। वे नित्य हैं, सर्वत्र हैं, सुखमय हैं और वास्तवमें वे ही तुम्हारे हैं। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

राम-रावण-युद्ध
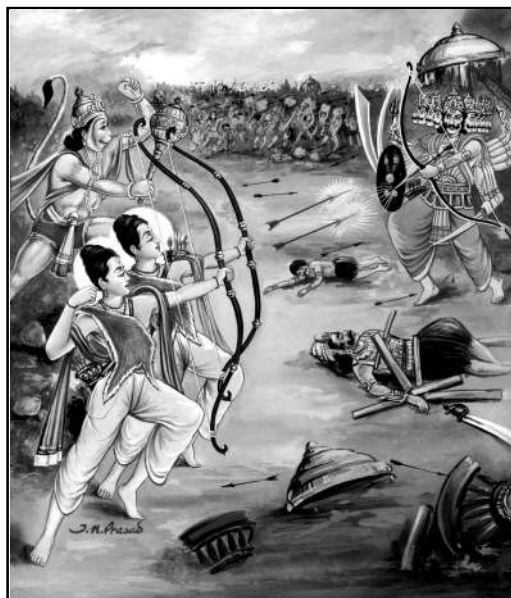
भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे नल और नीलने समुद्रपर सुन्दर सेतुकी संरचना कर दी। फिर धीरे-धीरे वानरोंकी सम्पूर्ण सेना उस सेतुसे समुद्रके उस पार पहुँच गयी। सुग्रीवने उस वीर वानरसेनाके ठहरनेकी यथोचित व्यवस्था की। यह विशाल सैन्यसमूह एक महासमुद्रके समान जान पड़ता था। वानरोंकी इस विशाल सेनाने लंकाको चारों ओरसे घेर लिया। लंकाके घेरे जानेकी बात सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ और उसने नगरकी रक्षाका प्रबन्ध पहलेसे दुगुना कर दिया।

तब भगवान् श्रीरामने वानरोंको लंकापर आक्रमणकी आज्ञा दे दी। वानर-सैनिक लंकाके परकोटोंपर चढ़ गये तथा वृक्षों और पत्थरोंके प्रहारसे उन्हें तोड़ने लगे। उन लोगोंने लंकाके चारों ओरकी जलसे भरी खाइयोंको पर्वत-शिखरों और वृक्षोंसे पाट दिया। तदनन्तर रावणकी प्रेरणासे राक्षस सैनिक भी युद्धके लिये निकलने लगे। वानरों एवं राक्षसोंके बीच घोर युद्ध शुरू हो गया। राक्षस दमकती हुई गदाओं, शक्ति, शूल और फरसोंसे वानरोंको मारते थे, उसी प्रकार वेगशाली विशालकाय वानर भी बड़े-बड़े वृक्षों, पर्वत-शिखरों, नखों और दाँतोंसे उनपर चोट करते थे। इस प्रकार राक्षसों और वानरोंमें बड़ा घमासान युद्ध होने लगा। देखनेपर यह युद्ध दूसरा देवासुर-संग्राम जान पड़ता था। धरती रक्त और मांसकी कीचसे पट गयी। इन्द्रजित् मेघनादने अंगदपर गदाका प्रहार किया, किंतु बलशाली अंगदने उसकी गदाको पकड़ लिया और उसी गदासे इन्द्रजित्के सुवर्णजटित रथको सारथि और घोड़ोंसहित चूर-चूर कर डाला। हनुमान्जीने जम्बुमालीपर थप्पड़का प्रहार किया और वह तत्काल यमलोक सिधार गया। श्रीलक्ष्मणने अपने तीखे बाणोंसे विरूपाक्षको मौतके घाट उतार दिया। सुषेणके प्रहारसे विद्युन्माली मारा गया। भयंकर युद्धके बाद अन्तमें श्रीरामके हाथों महाबलशाली कुम्भकर्ण तथा लक्ष्मणसे युद्ध करते हुए मेघनाद भी मारा गया। धीरे-धीरे इस युद्धमें रावणके सभी पुत्रोंसहित उसके प्रधान सेनापति मृत्युके ग्रास बन गये और रावण अकेला रह गया। वह दु:ख और क्रोधसे पागल हो गया। उसने सारथिको बचे हुए सैनिकोंके साथ अपने रथको युद्धभूमिमें ले चलनेकी आज्ञा दी। फिर वह श्रीरामके निकट जाकर क्रोधसे लाल आँखें किये उनपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। भगवान् श्रीरामने भी रावणके बाणोंको काटकर उसपर विषैले बाणोंकी झड़ी लगा दी। सम्पूर्ण आकाश वर्षाके मेघोंके समान बाणोंसे ढक गया। दोनों ही महान् धनुर्धर और युद्धकलामें निपुण थे तथा अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे, अत: दोनों योद्धा कालकी भाँति रणभूमिमें विचरने लगे। श्रीराम-रावणका वह युद्ध न रातमें बन्द होता था और न दिनमें। वे एक क्षणके लिये भी विश्राम नहीं लेते थे।

युद्धको निरन्तर बढ़ता देखकर देवराज इन्द्रके सारथि मातलिने कहा—'प्रभो! आप इस देवशत्रुके वधके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करें। देवताओंने इसके विनाशके लिये जो समय बताया था, वह अब आ पहुँचा है।' तब भगवान् श्रीरामने क्रोधित होकर एक परम तेजस्वी बाण हाथमें लिया और अत्यन्त कुपित होकर बड़े जोरके साथ धनुषको खींचा तथा उस मर्मभेदी बाणको रावणपर चला दिया। उस बाणने रावणके हृदयको विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार वह महातेजस्वी राक्षस प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। **[वाल्मीकीय रामायण]**

एकनिष्ठ भक्ति

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् अपने विरदकी तरफ देखें तो हम दर्शनोंके पात्र हैं ही। हमारी करतूत, श्रद्धा, प्रेमकी तरफ देखें तो हम दर्शनके पात्र नहीं। भगवान्‌की तरफसे दया-प्रेमकी कोई कमी नहीं है। भगवान्‌के आनेके पूर्व बार-बार खूब रोमांच होता है। यह रोमांच होना शुभ लक्षण है। जैसे भरतजी महाराज बारंबार हर्षित होते हैं। उनकी दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा फड़कती है—यह शुभ है, पर रोमांच होना और ऊँची बात है। सुतीक्ष्णमें खूब प्रसन्नता थी। जिसका अन्तःकरण जितना शुद्ध हो, श्रद्धा-प्रेम अधिक हो, उसमें उतना रोमांच अधिक होता है, यह शुभ लक्षण है।

पपीहेकी एकनिष्ठ भक्ति है। मछलीका प्रेम विरहकी पराकाष्ठा है। पपीहा स्वातिके जलके सिवाय दूसरे जलकी तरफ ध्यान ही नहीं देता। वैसे ही भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई विषय अच्छा नहीं लगे, यह एकनिष्ठ भक्ति है। चकोर चन्द्रमाको एकटक देखता है, वैसे ही भगवान्‌के स्वरूपको देखे। दर्शनमें चकोरका, विरहमें मछलीका और एकनिष्ठामें पपीहेका उदाहरण है। संसारसे जितना अधिक वैराग्य होगा, उतना अधिक भगवान्‌में प्रेम होगा और भगवान्‌में जितना प्रेम होगा, उतना संसारसे वैराग्य होगा। तराजूके दो पलड़े हैं, एक ऊँचा होगा तो दूसरा नीचा हो जायगा। वैसे ही भगवान्‌में प्रेम होगा तो संसारसे वैराग्य स्वतः ही होगा। अतएव खूब वैराग्य करे, परवैराग्य करे—

'असंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा' संसाररूपी वृक्षको दृढ़ वैराग्यके शस्त्रसे काटकर फिर उस पदकी खोज करना चाहिये, जहाँ जाकर फिर वापस आना नहीं होता। उसको प्राप्त करनेका उपाय है कि उस आदि पुरुष नारायणके शरण हूँ—ऐसा दृढ़ निश्चय करे।

'तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये' (गीता १५। ४)

वैराग्य अमृत है। इसलिये उसका सेवन करे। पदार्थोंमें आसक्तिका अभाव करे। कामना, आसक्ति एक ही बात है। यह परवैराग्य है। तीव्र संवेगवालेकी शीघ्र ही समाधि हो जाती है। अतएव बारंबार वैराग्यकी भावना करे। वैराग्यवान् पुरुषोंका संग और स्मरण करे। संसारसे बारंबार वृत्तियोंको उपराम करे। किसी भी प्रकारसे मनको स्फुरणासे रहित करे। ***'मन फुरणासे रहित कर, जौने विधिसे होय।'***

उपरामता होनी चाहिये। वह उपरामता वैराग्य होनेसे होती है। मन-इन्द्रियोंके साथ तीन चीज उत्तम है। मन-इन्द्रियोंको अपने वशमें करना, संसारके पदार्थोंसे वैराग्य और विषयोंसे हटकर परमात्मासे प्रेम। ये तीन बातें उत्तम हैं। वैराग्य होनेसे मन स्वतः ही वशमें होता है। इसीलिये भगवान्‌ने कहा है। वैराग्यसे अभ्यास बढ़ता है और वैराग्यसे मन वशमें होता है। संसारके पदार्थोंमें दुःखबुद्धि, अनित्यबुद्धि करे। भय, विवेक किसी प्रकारसे वैराग्य हो सकता है। संसारके पदार्थोंमें दुःख-दोषबुद्धि करनी चाहिये—**'जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्'** वैराग्यका नशा चढ़नेपर और कोई बात अच्छी नहीं लगती। यह भाव होना चाहिये कि संसारके पदार्थोंको भोगते-भोगते काफी समय हो गया, अब तो चेतना चाहिये। रात-दिन एकान्तमें भगवान्‌के भजन-ध्यानमें समय बिताना चाहिये। कुटुम्ब, रुपया, शरीर-भोग सबसे मोह एकदम हटा लेना चाहिये। निन्दा-स्तुतिकी परवाह न करे, बेपरवाह हो जाय।

चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बेपरवाह।
जाको कछु नहिं चाहिये सोई शाहंशाह॥

चाह अर्थात् इच्छा-चिन्ता-शोक, ये जिसके बीत गये, वही अच्छा है। भगवान्‌ने कहा है—**'निर्मानमोहा जितसंगदोषाः', 'विहाय कामान्यः सर्वान्'**

किसी बातकी परवाह नहीं। खाने, पीने, सोने—किसीकी परवाह नहीं। बेपरवाह हो जाय। सबसे वृत्तियाँ हटाकर परमात्मामें चित्तको लगाये। यह परमात्मामें रमण है—यही सबसे उत्तम रमण है।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०।९-१०)

जिसका चित्त मेरेमें है, वह मच्चित्ता है। मच्चित्ताके लिये संसारमें कोई दृष्टान्त उदाहरण नहीं है, जिससे मच्चित्ताको समझा सकें।

मद्गतप्राणाके लिये संसारमें उदाहरण है—जैसे मछलीके प्राण जलगत हैं। मछलीके प्राणोंका आधार जल ही है। परस्परमें भगवान्के विषयकी ही बात करें। बार-बार मेरा ही कथन करे और ऐसा करते हुए ही जो रमण और सन्तोष-लाभ करते हैं, उनके लिये भगवान् कहते हैं कि मैं उनको वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे उन्हें मेरी प्राप्ति हो जाती है।

परमात्मा बहुत उच्चकोटिके हैं। यह विश्वास होनेपर मनुष्य संसारसे विरक्त हो जाता है। भगवान् कैसे मिलें, इसके लिये आतुर हो जाय। भगवान्के दर्शनसे अमृतका आस्वादन आये, तब वह कहीं जाता नहीं। जितना-जितना आस्वादन, अनुभव उसकी तरफ हो जाय; उतना-उतना उसमें लग जाय। वैसे ही निराकारका तत्त्व जितना समझमें आ जाय, उतना वह हटनेका नहीं। वह तो नष्ट नहीं होता। जितनी दूरतक समझ गया उतना तो अटल हो गया। वह जाता नहीं। जैसे कर्मयोगमें निष्कामभाव, भक्तिमें भगवान्का प्रेम, वैसे ही ज्ञानमें जानकारी जितनी बढ़ गयी, वह जायगी नहीं। वास्तवमें जो प्राप्त हो गया, वह जायगा नहीं। वह असली पूँजी है। सांसारिक धन मिथ्या है।

धनवन्ता सोई जानिये जाके राम नाम धन होय।
लगन लगन सब कोई कहे लगन कहावे सोय।
नारायण जा लगनमें तन मन दीजे खोय॥

लगन उच्चकोटिकी चीज है। परमार्थ या लौकिक किसी भी विषयमें देखें, लगन होना बड़े कामकी चीज है।

आत्मज्ञानी

(प्रो० श्रीकैलाशचन्द्रजी गुप्ता, पी-एच०डी०, डी०एस-सी०)

आत्मज्ञानी अन्तःस्फूर्त होकर सहज भावसे सब कार्य करता है तथा अपने भीतर एक अद्भुत प्रवाह, दिव्य आनन्द तथा पूर्णताका अनुभव करता है। वह जीवन-मरणकी चिन्ता नहीं करता। वह देह तथा मनसे परे आत्म-चैतन्यमें स्थित होकर अपने भीतर निरन्तर आत्म-मग्न रहता है।

अहंकारशून्य आत्मज्ञानी न कर्मका कर्ता होता है, न फलका भोक्ता। वह सहज भावसे शारीरिक क्रियाएँ करता है। ठहरने, चलने अथवा शयन करनेसे उसकी आनन्दावस्थामें कोई अन्तर नहीं आता।

आत्मज्ञानी निरुद्देश्य और निष्क्रिय प्रतीत होकर भी किसी दिव्य उद्देश्यकी पूर्ति करता है। अद्भुत होती है उसकी अवस्था। उसका मन परिपूर्ण हो जाता है। वह जगत्का मात्र साक्षी हो जाता है।

आत्मज्ञानीकी इच्छाओं और कामनाओंके नष्ट होनेसे उसके लिये संसार विलुप्त हो जाता है। पत्नी, पुत्र, धन, शिक्षा और वैभव आत्मज्ञानीके लिये सब निष्प्रयोजन हो जाते हैं। नदीको पार करनेपर नौकाका कोई प्रयोजन नहीं रहता। वासनारहित तथा स्वयंका बोध होनेसे आत्मज्ञानी निश्चय कर लेता है कि आत्माके अतिरिक्त तत्त्वतः कहीं भी कुछ नहीं है। वह संकल्प-विकल्प भी नहीं करता तथा शान्त हो जाता है। आत्मज्ञानी वासना तथा अहंकारसे मुक्त होता है। वह न कामना करता है, न ग्रहण करता है। न प्रसन्न होता है, न शोक करता है।

आत्मज्ञानी आसक्त स्त्रीके हाव-भावसे आकृष्ट नहीं होता तथा मृत्युकी समीपता उसे भयभीत नहीं करती। वह भोगेच्छा तथा मोक्षेच्छासे परे चला जाता है। उसके लिये कुछ भी त्याज्य और ग्राह्य नहीं होता। वह सदैव आत्मसन्तुष्ट रहता है। वह अपनी प्रशंसा सुनकर हर्षित नहीं होता तथा निन्दा सुनकर कुपित नहीं होता।

भगवत्प्राप्ति अत्यन्त सुगम

(ब्रह्मलीन जगद्‌गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

जो लोग शास्त्रों तथा गुरु एवं आप्तजनोंके वचनोंमें श्रद्धापूर्वक पूर्ण विश्वास करते हैं, उनको भगवान्‌की प्राप्ति बड़ी सुगम है। भगवती गीतादेवी कहती हैं कि वह भगवत्तत्त्व उत्पत्तिशील, अतएव समस्त कल्पित भूतोंमें भीतर और बाहर व्याप्त है। वह चर भी है और अचर भी। इस प्रकार वह सर्वस्वरूप होनेपर भी रूपादिहीन होनेके कारण अनायास स्पष्ट ज्ञानके योग्य नहीं है। वह दूर भी है अर्थात् जो लोग आत्मज्ञानके साधनसे शून्य हैं, उनके लिये हजार करोड़ वर्षमें भी लक्षकोटि-योजनव्यवहितकी तरह अत्यन्त दूर है। ज्ञानसाधनसम्पन्नोंके लिये आत्मस्वरूप होनेके कारण अत्यन्त पास है, मानो जैसे उसे सदा प्राप्त हो—

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥

अतः ब्रह्मतत्त्व अत्यन्त पास होनेके कारण अत्यन्त सुगम है। शास्त्रोंमें एक शबरोपाख्यान आता है। कहते हैं कि एक राजाके यहाँ अभुक्त-मूलमें राजपुत्रका जन्म हुआ। ज्योतिषियोंकी सम्मतिके अनुसार वह जंगलमें छोड़ दिया गया। चतुर मन्त्री छिपे रूपमें उसकी देख-भाल करता रहा। वहाँसे उसे एक शबर उठा ले गया। सन्तानहीन होनेसे शबरने उसका भली-भाँति भरण-पोषण किया। संयोगवश थोड़े ही दिनोंमें राजाका स्वर्गवास हो गया। कोई राज्य करनेयोग्य उत्तराधिकारी नहीं था। मन्त्रियोंने विचार किया कि राज्यका सम्यक् संचालन वही कर सकता है, जो राजवीर्यसे उत्पन्न हुआ हो। इस निश्चयके अनुसार मन्त्री स्वयं कुछ सैनिकोंके साथ एक दिव्य रथ लेकर शबरके गृहमें रहनेवाले राजपुत्रको लेने गया। सेनाके साथ राजमन्त्रीको आया हुआ सुन वह अपनेको शबरपुत्र माननेवाला राजपुत्र घरके भीतर छिप गया। बड़े प्रयत्नके बाद जब निकला तो हाथ जोड़कर मन्त्रीसे प्रार्थना करने लगा कि 'महाराज! मैंने कौन ऐसा अपराध किया, जिससे मुझे आप गिरफ्तार करना चाहते हैं?' मन्त्रीने उत्तर दिया—'आपका कोई अपराध नहीं है, किंतु आप भूले हैं, जो अपनेको शबर-पुत्र समझते हैं। आप राजपुत्र हैं और आपको राजा बनानेके लिये मैं लेने आया हूँ, आप राजा हैं। हम लोग आपके पोष्य हैं। फिर आप हमसे डरते क्यों हैं? हम लोगोंको आज्ञा कीजिये।' फिर क्या था, वह अपनेको राजपुत्र समझ गया और जिनसे डरता था, उन्हींपर शासन करने लगा।

ठीक इसी प्रकार जीवात्मा वस्तुतः है भगवद्रूप, किंतु अनादि अविद्याके कारण अपनेको मरणधर्मा आधि-व्याधि-शोक-मोहयुक्त समझकर अनन्त कालसे दुःखजालका अनुभव कर रहा है। जहाँ साधन-चतुष्टयसम्पन्न हुआ और गुरुने 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंका उपदेश किया कि वह समस्त सांसारिक दुःखबन्धनोंसे छूटकर भगवद्रूप हो जायगा। इसी भावका एक श्लोक भगवान् शंकराचार्यका है—

दाता भोगपरः समग्रविभवो यः शासिता दुष्कृतां
राजासित्वमसीति रक्षितमुखाच्छ्रुत्वा यथावत्स तु।
राजीभूय जयार्थमेव यतते तद्वत्पुमान्बोधितः
श्रुत्वा तत्त्वमसीत्यपास्तदुरितं ब्रह्मैव संपद्यते॥

अतः प्रथम साधनचतुष्टयसम्पन्न होनेका प्रयत्न करना चाहिये। उसमें भी वैराग्यकी बड़ी आवश्यकता है।

आजकल वैराग्यका वास्तविक अर्थ भी लोग नहीं समझते। योगसूत्रकारके अनुसार रूप-रसादि भोगविषयोंके प्राप्त होनेपर भी विवेकके प्रबलतावश उन विषयोंके भोगकी इच्छासे रहित बुद्धि ही वशीकारसंज्ञक वैराग्य है। परमार्थके पथिकको इस वैराग्यकी बहुत आवश्यकता है, यह निश्चय है कि जबतक मानसमें तनिक भी विषयकी वासना है, तबतक सभी साधन अकिंचत्कर हैं। श्रीशुकदेवजीने रम्भासे कहा था कि 'यह मानव-जीवन स्त्री-सम्भोगरूप विषय-सेवनके लिये नहीं है। वह तो सभी योनियोंमें प्राप्त होता है। मानवयोनि तो मोक्षका द्वार है।' यह है वैराग्य। मोक्षके लिये बलवान् होना भी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि शास्त्र कहते हैं कि **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।'** यह आत्मा बलहीनोंको नहीं प्राप्त होती है। योगसूत्रकारने मोक्ष चाहनेवालेके लिये आत्मविद्या ही बल बताया है—**'आत्मविद्यया अशेषविषयदृष्टितिरस्करणं बलम्।'** आत्मविद्याके द्वारा समस्त विषय-विषयक दृष्टिका

तिरस्कार करना ही बल है। अतः रूपात्मक दृश्य-प्रपंचको आत्म-दृष्टिके द्वारा आच्छादित कर देना नितरां आवश्यक है।

जिनके हृदयमें सांसारिक विषयवासनाका लेश भी विद्यमान है तथा आत्मविद्याके द्वारा जिन्होंने समस्त प्रपंचको आत्ममय देखनेका अभ्यास नहीं किया, उनका हृदय दुर्बल है। वे इस मार्गमें आनेका भी साहस नहीं कर सकते। इस मार्गमें आनेका काम तो बड़े शूरवीरोंका है। यही भगवान्ने अर्जुनसे कहा था—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥

हे अर्जुन! तू क्लीबभावको मत प्राप्त हो, तुझे यह बात शोभा नहीं देती। हे परन्तप! हृदयकी इस तुच्छ दुर्बलताको छोड़कर खड़ा हो जा। इसके अनुसार प्रमाद, आलस्य और आराम आदि जो हृदयकी दुर्बलताएँ हैं, उनको छोड़ना पड़ेगा और अपने-अपने वर्णाश्रमकर्मोंके अनुष्ठानरूपी तपको बढ़ाना होगा; क्योंकि बलवान्को ही बलवान्की प्राप्ति होती है। शास्त्रोंमें भगवान्को ही सर्वोत्तम बलवान् बताया गया है—

एवं नैवास्ति संसारे यच्च सर्वोत्तमं बलम्।
विहायैकं जगन्नाथं परमात्मानमद्वयम्॥

संसारमें अद्वय तत्त्व भगवान् जगन्नाथको छोड़ अन्य कोई सर्वोत्तम बल नहीं है। उस बलको प्राप्त करनेके लिये बलवान् होना ही पड़ेगा। इसमें प्रमाद नहीं करना होगा। प्रमादीसे भगवान् बहुत दूर रहते हैं। भगवान् ही क्यों, प्रमादी कभी भी अपनी अभिलषित सांसारिक वस्तु भी प्राप्त नहीं कर सकता।

विष्णुपुराणमें एक कथा आती है। कण्डु ऋषि इन्द्रपद चाहते थे। दुष्करसे दुष्कर भी कार्य तपके द्वारा सिद्ध होता है। महाभारतकारने लिखा है—

ईहमानः समारम्भान् यदि नासादयेद्धनम्।
उग्रं तपः समातिष्ठेन्न ह्यनुप्तं प्ररोहति॥

बड़े-से-बड़े प्रयत्नको करता हुआ भी यदि मानव धनादि अभिलषित वस्तुओंको नहीं प्राप्त कर पाता तो उसे चाहिये कि घोर-से-घोर तप करे, क्योंकि बिना बोये बीज जमता नहीं, अर्थात् बिना तपके कुछ प्राप्त नहीं होता। अतः महर्षि कण्डुने इन्द्रपदकी प्राप्तिके लिये घोर तप करना प्रारम्भ किया। उनके उग्र तपको देखकर इन्द्र भी भयभीत हो गये थे कि सचमुच यह हमारा पद न छीन ले। यह सोचकर उन्होंने महर्षिके तपको नष्ट करनेके लिये एक अप्सरा भेज दी। फिर क्या था, उसके दिव्य सौन्दर्यको देखकर वे उसमें आसक्त हो गये और ऐसे आसक्त हुए कि नौ सौ वर्षका समय उनको एक दिनके भी समान नहीं प्रतीत हुआ। यह है विषयकी करामात! बादको जब ऋषिको ध्यान हुआ कि यह मैं क्या कर रहा हूँ, क्या यही इन्द्रपदकी प्राप्तिके लिये तप है? इस अप्सराने तो हमारा सर्वनाश कर दिया। फिर तो अप्सरा काँप गयी कि कहीं ये मुझे शाप न दे दें।

इससे हमलोगोंको शिक्षा लेनी चाहिये कि अब्भक्ष, वायुभक्ष और महासंयमी एक महर्षि भी जब विषय-सन्निधानमें इतने प्रमादी हो जाते हैं, तो हम लोग जो प्रायः सभी साधनोंसे शून्य हैं, उनकी क्या दशा होगी? अतः प्रमाद छोड़कर सर्वदा सावधान रहना चाहिये। यह सबको विदित है कि साधकको जितना डर बाहरके शत्रुओंसे नहीं, उससे कई गुना भीतरके शत्रुओंका होता है। शास्त्र कहते हैं—

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥

अहंकार, बल, दर्प, काम और क्रोधके अधीन प्राणी अपने तथा दूसरोंमें वर्तमान मेरे (भगवान्के) साथ विद्वेष करते हैं तथा मोक्षोपयोगी गुणोंसे भी द्वेष करते हैं। अतः साधकको कभी भी इनके अधीन नहीं होना चाहिये। काम और रागसे विवर्जित प्राणीमें जो बल है, वह भगवान्का ही बल है—**'बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।'** भक्त भगवान्से भक्ति चाहता है। मुक्ति नहीं, किंतु भक्तिके मिलनेके बाद मुक्ति हठात् लेनी पड़ती है। केवल भक्त होनेकी आवश्यकता है। साधकके भक्त होते ही भक्ति महारानीकी असीम कृपासे भक्तको जहाँ देहात्मभावना दूर हुई कि मुक्ति महारानी चरणोंमें लोटने लगी; क्योंकि अन्तमें आत्मा ही तो परमात्मा है। वह अपने सबसे अंतरंग है, अतः अन्तरंगकी प्राप्ति अत्यन्त सुगम ही है।

भगवान्‌का स्मरण सम्पत्ति और विस्मरण विपत्ति

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

मान गया, धन गया, यश गया, प्रतिष्ठा गयी, सब कुछ चला गया—मनुष्य रोने लगता है, छटपटाने लगता है, पर उस समय दयामय प्रभु मधुर-मधुर मुसकराने लगते हैं, हँसने लगते हैं कि 'यह मेरा प्यारा बच्चा विपत्तिसे बच गया।' जिसे हम सम्पत्ति मानते हैं, सचमुच वह विपत्ति ही है।

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

'जगत्‌की विपत्ति विपत्ति नहीं, जगत्‌की सम्पत्ति सम्पत्ति नहीं, भगवान्‌का विस्मरण ही विपत्ति है और भगवान्‌का स्मरण ही सम्पत्ति है।'

श्रीतुलसीदासजीके शब्दोंमें—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

जिस कालमें भगवान्‌का साधन-भजन—उनका मधुर स्मरण नहीं होता, वह काल भले ही सौभाग्यका माना जाय, उस समय चाहे चारों ओर यश, कीर्ति, मान, पूजा होती हो, सब प्रकारके भोग उपस्थित हों, समस्त सुख उपलब्ध हों, पर जो भगवान्‌को भूला हुआ हो, भगवान्‌की ओरसे उदासीन हो, तो वह विपत्तिमें ही है—असली विपत्ति है यह। इस विपत्तिको भगवान् हरण करते हैं, अपने स्मरणकी सम्पत्ति देकर। यहाँ भी भगवान्‌की कृपा प्रतिफलित होती है।

जब हम धन-पुत्रकी प्राप्ति, व्यापारकी उन्नति, कमाई, प्रशंसा, शरीरके आराम, अच्छे मकान, कीर्ति, अधिकार आदिको भगवान्‌की कृपा मान लेते हैं, तब उसे बहुत छोटे-से दायरेमें ले आते हैं और गलत समझते हैं। भगवान्‌की कृपा यहाँ भी है, परंतु ये समस्त सामग्रियाँ भगवान्‌की पूजाके उपकरण बनी हुई हों तो। और यदि ये सब भोग-सामग्रियाँ, सारी-की-सारी चीजें भगवान्‌के पूजनका उपकरण न बनकर अपने ही पूजनमें मनुष्यको लगाती हैं, तो वहाँ भगवान्‌का तिरस्कार होता है, अपमान होता है। वस्तुतः भगवान् इनको इसीलिये देते हैं कि इनके द्वारा भगवान्‌की पूजा करके मनुष्य कृतार्थ हो जाय, पर ऐसा न करके वह यदि इनका स्वामी बनकर भगवान्‌को भूल गया, तो वह भोगोंका स्वामी नहीं, भोगोंका किंकर है। भोग उसे चाहे जहाँ ले जाते हैं। वे उसे धर्मच्युत कर देते हैं। वह भोगका गुलाम है। इसलिये भगवान्‌ने भोगोंको दुःखयोनि कहा है। भोगोंपर स्वामित्व हो, मन निगृहीत हो, सारे-के-सारे भोग और अन्तःकरण निरन्तर भगवान्‌की सेवामें लगे हों, तभी भोगोंका स्वामित्व है। ऐसा नहीं है तो भोगका स्वामी कहलाकर भी वह भोगका गुलाम बना हुआ है और जहाँ भोगोंकी गुलामी है, वहाँ भगवान्‌की कृपा कैसी? भगवान्‌की कृपा तो वहाँ आती है, जहाँ सारी गुलामी छूटकर केवल भगवान्‌की दासता होती है। तमाम परतन्त्रता टूट गयी, रह गया केवल भगवान्‌का चरणाश्रय। वहीं होता है भगवान्‌की कृपाका प्राकट्य। जितनी-जितनी भोगोंकी वृद्धि होती है, उतनी-उतनी उनकी दासता बढ़ती है। जिसकी जितनी बड़ी ख्याति है, बड़ी कीर्ति है, उसकी उतनी ही अधिक बदनामी होती है। इसलिये भोगबाहुल्य भगवान्‌की कृपाका लक्षण नहीं है। भगवान्‌की कृपा तो वहाँ होती है, जहाँ भगवान्‌का प्रेम है और भगवच्चरणानुराग है। कितने साधक कहते हैं कि 'अमुक आदमी कितना सुखी हो गया। कितने पैसेवाला हो गया, उसके व्यापार हो गया, आपने उनपर कृपा की। हमारे साथ तो आपका दुर्भाव है।' पर उन्हें कैसे समझाया जाय कि भोगबाहुल्य तो भगवान्‌की अकृपाका लक्षण है। तुलसीदासजीने घोषणा की—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषन बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रजबनितनि भे जग मंगलकारी॥

जिसको भगवान् सीताराम प्यारे नहीं हैं, वे यदि प्यारे-से-प्यारे हों, परम सनेही हों, तब भी वे त्याज्य हैं। यदि हम किसीके माता, पिता, भाई, गुरु, स्वामी हैं, तो हमारा यह कर्तव्य है कि हम उन्हें भगवान्‌में लगानेका प्रयास करें, न कि उन्हें नरकोंमें पहुँचानेका प्रबन्ध कर दें। वह पिता पिता नहीं, वह माता माता नहीं, वह भाई भाई नहीं, वह गुरु गुरु नहीं और वह देवता देवता नहीं, जो

भगवान्‌से हटाकर हमें भोगोंमें लगा दे। इसीलिये तुलसीदासजीने कहा—

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान तें प्यारो।
जातें होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो॥

'वही परम हितैषी है, वही परम पूज्य है, वही प्राणोंका प्यारा है, जिससे रामके चरणोंमें स्नेह बढ़े, यह हमारा निश्चित मत है।' भगवान्‌में मन लगे, भोगोंसे मन हटे। वास्तवमें भोगको प्रोत्साहन देना, मनुष्यको बिगाड़ना है, उसे बुरे मार्गमें लगाना है। ऐसे मार्गमें लगा देना तो उसके साथ शत्रुता करनी है। ऐसी कोई वस्तु कोई किसी प्राणीको दे दे कि वह भगवान्‌को भूल जाय। अमृत भूलकर विष खा ले तो वह मित्र नहीं। उसका मुँह ऊपरसे मीठा है, पर भीतर उसके हालाहल भरा हुआ है। मित्र वह है, जो अन्दरसे मित्र है और जो हमें सुधार देता है। विषय-भोगोंमें लगानेवाले मित्र कदापि मित्र नहीं। ऐसे ही मित्रके लिये कहा गया है—'**विषकुम्भं पयोमुखम्।**' एसे जहर-भरे दुधमुँहे घड़ेके सदृश ऊपरसे मीठे बोलकर विषयोंमें लगानेवाले मित्रोंको छोड़ देनेमें ही कल्याण है। संसारके विषय-भोग ठीक ऐसे ही हैं। वे देखनेमें अमृत लगते हैं, पर परिणाममें विष ही सिद्ध होते हैं। '**परिणामे विषमिव**'। माता, पिता, गुरु, भाई, मित्र किसीको दूध बताकर विष दे देना, उसका उपकार करना नहीं, बुरा करना है। अतएव सबको स्पष्ट बता देना चाहिये कि इस विषसे बचो। यह मार देगा, यह नरकोंमें डाल देगा। पर यह कहना तो तभी बनता है, जब हम स्वयं इससे बचे हुए हों। असली चीज तो यही है कि भोगोंकी प्राप्ति, भोगोंकी स्पृहा, भोगोंको प्राप्त करनेकी कामना, मकान, मोटर, अधिकार, पद, पाँच आदमी मेरे आगे-पीछे चलें—यह कामना तथा यह सब देखकर मनका ललचाना, यह सब नरकरूप ही कहे गये हैं।

ते नर नरकरूप जीवत जग भव-भंजन-पद-बिमुख अभागी॥

इसीलिये वे अभागे हैं, उनका जीवन नरकरूप है। संसारके इन प्रलोभनीय वस्तुओंको दे देना, इनमें लगा देना, इनमें आकर्षण उत्पन्न कर देना, उसकी महत्ता बता देना हितकर नहीं है, अतः उचित नहीं है। यह तो उसके साथ वैर करना है। जिनके पास ये सामग्रियाँ हैं, उनको भी इनकी बुराइयाँ बता देनी चाहिये।

भगवान्‌की कृपाका आश्रय करें और भगवान्‌की कृपा जब जिस रूपमें आये, स्वागत करें। यदि वह कृपा हमारा मान भंग करनेवाली हो, इज्जत मिटानेवाली हो, जगत्‌से सम्पर्क हटानेवाली हो, तब यह समझना चाहिये कि भगवान्‌का सांनिध्य प्राप्त होनेवाला है। यह संसारका नियम है कि जगत् तभीतक पकड़ता है, जबतक उससे कुछ मिलता रहे। बूढ़े माता-पिताको भी लोग कहते हैं, भगवान् सुन लें तो अच्छा है, अर्थात् ये चल बसें, तो सुख रहे। जगत्‌के भोग किसीके नहीं हैं। किसीका यथार्थ प्रेम नहीं है। धनमें, मानमें, कीर्तिमें कहीं भी सुख नहीं है। केवल जो आत्मा है, जो हमारा अपना स्वरूप है, जो सदा हमारे साथ है, इस शरीरके नष्ट होनेपर जो हमारे साथ रहेगा, उसीमें सुख है। ये धन, कीर्ति और मानका सुख तो उधार लिया मिथ्या सुख है; हम इन्हें सुखका स्वरूप समझ लेते हैं। यह हमारी भूल है, ये न तो सुख हैं और न ये सदा रहते ही हैं। साधकको चाहिये कि वह निरन्तर भोगोंसे मन हटाता रहे, भोग हमारे शत्रु हैं, यह भाव मनमें बार-बार भरता रहे और प्रेममय आनन्दमय भगवान्‌में मन लगाता रहे।

इसके लिये पूरा प्रयत्न करें। भोगोंका नाश हो तो दुखी न होकर परम सौभाग्य मानें, उसमें सहज सुहृद् श्रीभगवान्‌की कृपाका अनुभव करें। भगवान् हमारे नित्य सुहृद् हैं। वे कभी अकृपा करना जानते ही नहीं। मलेरिया होनेपर डॉक्टरने कड़वी दवा दे दी, हम मानते हैं कि यह हमारे लाभके लिये है। इसी प्रकार आवश्यक होनेपर भगवान् हमें कड़वी दवा देंगे। डॉक्टरके द्वारा हमारे हितके लिये किये जानेवाले अंगच्छेद (ऑपरेशन)-की भाँति आवश्यकता होनेपर वे हमारा अंग भी काट सकते हैं, पर उसमें हमारा लाभ ही होगा। हमारे भयानक दुःखदायी रोग-दोष और हमारी बीमारी दूर करनेके लिये भगवान् हमपर कृपा कर रहे हैं, यह समझना चाहिये। भगवान्‌की कृपा समझकर निरन्तर उनका नाम लेता रहे और अपना जीवन भगवान्‌की इच्छाके अनुकूल बनाये। भगवान् हमारा सारा कार्य करते हैं, वे नित्य हमारा हित ही करते रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे—यह विश्वास रखें तो निश्चय ही हम निहाल हो जायँगे। हरिः ॐ तत्सत्।

हम विशुद्ध भारतीय बनें

(गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

[श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराजका आलेख स्वतन्त्रताप्राप्तिके बादके वर्षमें कल्याणमें प्रकाशित हुआ था। स्वतन्त्रताके हीरक जयन्ती-वर्ष-महोत्सवकी वेलामें हमें आत्मनिरीक्षणकी प्रेरणा प्राप्त हो—इस दृष्टिसे इन सन्त-वचनोंकी सार्थकता है।—सम्पादक *]*

भारत देश स्वतन्त्र हो गया है। स्वतन्त्र देशके इतने चिह्न हैं—(१) उस देशकी प्राचीन परम्परा, (२) उस देशकी विशेष संस्कृति—धर्म, (३) उस देशकी अपनी भाषा, (४) उस देशका अपना निजी विधान और (५) अपनी मातृभूमिकी एक विशिष्ट पूजा। स्वतन्त्र देशोंमें ये सब निजी परम्पराएँ होती हैं। मुझे अत्यन्त दुःखके साथ कहना पड़ता है कि हम कहनेको तो स्वतन्त्र हो गये हैं, किंतु हमारी मानसिक दासता अभी नहीं गयी है। हम अभीतक पाश्चात्य परम्पराकी नकल करते हैं।

हमारे देशकी परम्परा है गुरु-शिष्यका सौहार्द-आदर। हमारे देशकी परम्परा यह है कि हमारे सभी कार्य भगवान्‌को लक्ष्य करके ही हों। आज हममें अनेक त्रुटियाँ आ गयी हैं। भारतीयोंमें गुरु-शिष्य-सम्बन्ध भारतीय नहीं रहा। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप, आस्तिकता, जो हमारे देशका प्राण है, उसे न भुलायें। करने-करानेवाले भगवान् ही हैं, आप भगवान्‌को न भूलें। भगवान् तर्ककी वस्तु नहीं, यह तो श्रद्धाकी वस्तु है। इसीलिये वेदोंमें बार-बार कहा है—श्रद्धा करो, श्रद्धा करो। भारत धर्मप्रधान देश है। भारतकी सिद्धि इसलिये नहीं है कि हमारे यहाँ मशीनें हैं, कारखाने हैं। हमारे देशका गौरव धर्मके कारण है, अतः आप धर्मको न भूलें। भारतीय संस्कृति कहो, भारतीय धर्म कहो, दोनों एक ही बात है। हिन्दू-धर्मको छोड़कर हिन्दू-संस्कृतिके नामसे जो नर्तकियों और गायक-गायिकाओंके विशिष्ट मण्डल भेजे जाते हैं, यह हमारी संस्कृतिका उपहास है। हमारी संस्कृति तो धर्ममें सन्निहित है। नृत्य, वाद्य और गान—यह भी भारतकी विशेष धार्मिक पद्धति है, किंतु नाचना-गाना ही हमारी संस्कृति नहीं है। अतः आप धर्मको न भूलें, अपनी धार्मिक भावनाओंकी अवहेलना न करें।

यहाँकी भाषा संस्कृत है। संस्कृतसे ही प्रायः सभी भारतीय भाषाओंकी उत्पत्ति है। मूल उद्गम संस्कृत है। हिन्दी संस्कृतकी पुत्री है। अतः आप जहाँतक हो संस्कृत और हिन्दीमें सब विषयोंका अध्ययन करें। संस्कृत और हिन्दीके अध्यापक तथा छात्रोंको हेयकी दृष्टिसे देखनेकी जो एक चाल चल रही है, उसे मिटाइये। अपनी भाषाको पढ़ने-पढ़ानेवालोंको विदेशी भाषाओंसे अधिक गौरवकी दृष्टिसे देखिये। अपने दैनिक व्यवहार, बोल-चाल, व्याख्यान, पत्र-व्यवहार हिन्दीमें कीजिये; पुस्तकें-कविताएँ हिन्दीमें ही लिखिये। भाषा अपनी राष्ट्रियताकी सबसे बड़ी निधि है, राष्ट्रियताका प्राण है।

हमारा विधान वेद-शास्त्र-स्मृतियोंके आधारपर होना चाहिये। मुझे दुःख है कि आज जो विधान बना है, वह इंग्लैण्ड-अमेरिकाका उच्छिष्ट है। उसमें भारतीयता नहीं। हमें अपना निजी विधान पुनः बनाना है, उसमें भारतीयताको लाना है।

हम भारतको एक निर्जीव भूमिका टुकड़ा नहीं मानते। भारतको हमने माताका रूप दिया है। हिमालय उसका सिर है; कन्याकुमारी, मलयालम दक्षिणके देश उसके पैर हैं; उड़ीसा, बंगाल, पंजाब, सिन्धु उसके चार हाथ हैं; ऐसी हमारी भारतमाता है। हमारी भारतमाताके अंगोंका खण्ड कर दिया गया है। हमें पुनः अपनी खण्डित माताको अखण्डित करना है।

गौकी मान्यता हमारी संस्कृतिका आधार है। सभी सम्प्रदाय, सभी वर्ग, सभी दल गौको सदासे अवध्या मानते रहे हैं। हमें देशसे गोवधको, सर्वथा प्राणोंकी बाजी लगाकर बन्द कराना है।

परमपिता परमात्माके पाद-पद्मोंमें मेरी यही प्रार्थना है कि हमें विशुद्ध भारतीय बनायें। धर्मके प्रति आस्था हो। मंगलमय भगवान् हमारा सर्वत्र मंगल करें।

साधकोंके प्रति—

सच्ची मनुष्यता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

अपने सुखसे सुखी होना और अपने दुःखसे दुखी होना—यह पशुता है तथा दूसरेके सुखसे सुखी होना और दूसरेके दुःखसे दुखी होना—यह मनुष्यता है। अतः जबतक दूसरेके सुखसे सुखी होने और दूसरेके दुःखसे दुखी होनेका स्वभाव नहीं बन जाता, तबतक वह मनुष्य कहलानेके योग्य नहीं है। वह आकृतिसे चाहे मनुष्य दीखे, पर वास्तवमें मनुष्य नहीं है। जबतक स्वयंके सुखसे सुखी और स्वयंके दुःखसे दुखी होंगे, तबतक मनुष्यता नहीं आयेगी।

जो अपने सुखके लिये दूसरोंकी हानि करता है, वह मनुष्य कहलानेके योग्य नहीं है। मनुष्य वही होता है, जो स्वार्थका त्याग करके दूसरेका हित करे, कम-से-कम दूसरेकी हानि न करे। अतः यह शिक्षा ग्रहण करनी है कि हमारे द्वारा किसीको किंचिन्मात्र भी दुःख न हो। दूसरोंका दुःख कैसे मिटे—इससे भी आगे दूसरोंके हितकी दृष्टि रखो कि दूसरोंका हित कैसे हो? प्राणिमात्रके हितमें रति हो—'**सर्वभूतहिते रताः**' (गीता ५। २५; १२। ४)। दूसरोंका हित कितना करना है, कितना नहीं करना है—इसकी आवश्यकता ही नहीं। हमारे पास जितनी सामर्थ्य है, जितनी योग्यता है, जितनी सामग्री है, उसीको दूसरोंके हितमें लगाना है, उतनी ही हमारी जिम्मेवारी है। सबको सुखी बना दे—यह किसी मनुष्यकी शक्ति नहीं है। यह इतनी कठिन बात है कि दुनियाके सब-के-सब आदमी मिलकर यदि एक आदमीको भी सुख पहुँचानेकी चेष्टा करें, तो भी उसे सुखी नहीं कर सकते। कारण कि उसमें जो धनकी, भोगोंकी, मानकी, बड़ाईकी, आरामकी लालसा है, वह ज्यों-ज्यों धन, भोग आदि मिलेंगे, त्यों-ही-त्यों अधिक बढ़ती जायगी—***'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।'*** अधिक-से-अधिक धन आदि मिलनेपर भी वह तृप्त नहीं हो सकता। जब सम्पूर्ण दुनिया मिलकर भी एक आदमीको सुखी नहीं कर सकती, तो एक आदमी दुनियाके दुःखको दूर कैसे करेगा? परंतु 'दूसरेको सुख कैसे हो'—यह भाव सब बना सकते हैं, चाहे वह भाई हो या बहन हो, बालक हो या जवान हो, धनी हो या निर्धन हो। सांसारिक वस्तुओंमें किसीको अधिकार मिला है, किसीको नहीं मिला है; परंतु हृदयसे सबका हित चाहनेका अधिकार सबको मिला है। इस अधिकारसे कोई भी वंचित नहीं है।

जो अपनी शक्तिके अनुसार दूसरोंका भला करता है, उसका भला भगवान् अपनी शक्तिके अनुसार करते हैं। वह अपनी पूरी शक्ति लगा देता है, तो भगवान् भी अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं। जब भगवान् अपनी शक्ति लगा देंगे, तब वह दुखी कैसे रहेगा? उसे कोई दुखी कर ही नहीं सकता। वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है—'**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः**' (गीता १२। ४)।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

'सब सुखी हो जायँ, सब नीरोग हो जायँ, सबके आनन्द-मंगल हो, कभी किसीको किंचिन्मात्र भी कष्ट न हो'—यह जिसका भाव बन जाय, वही मनुष्य कहलानेके योग्य है। जबतक वह दूसरेके दुःखसे दुखी नहीं होता, तबतक वह मनुष्य कहलानेयोग्य नहीं है। दूसरी एक और बात है—जो दूसरोंके दुःखसे दुखी होता है, उसे अपने दुःखसे दुखी नहीं होना पड़ता। आपलोग ध्यान दें, अपने दुःखसे दुखी उसीको होना पड़ता है, जो दूसरोंके दुःखसे दुखी नहीं होता और दूसरोंके सुखसे सुखी नहीं होता। वही संग्रही बनता है और अपने सुखका भोगी बनता है। उसे सुखका अभाव रहता है, कमी रहती है; परंतु जो दूसरेके सुखसे सुखी होता है, उसे सुखकी कमी रहती ही नहीं। कमी कैसे नहीं रहती? कि उसे अपने सुखभोगकी इच्छा ही नहीं रहती।

संग्रह करना और भोग भोगना—ये दोनों परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें बाधक हैं। रुपये-पैसे मेरे पास आ जायँ, सामग्री मुझे मिल जाय, भोग मैं भोग लूँ—यह जो भीतरकी लालसा है, यह परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होने देती। कारण कि संग्रह करेगा तो शरीरसे ही करेगा

और सुख भोगेगा तो शरीरसे ही भोगेगा। अत: इस हाड़-मांसके पुतलेमें लिप्त रहनेसे, इसकी गुलामी रहनेसे चिन्मय तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी; परंतु दूसरोंके सुखमें सुखी होनेसे भोग भोगनेकी इच्छा और दूसरोंके दु:खमें दुखी होनेसे अपने लिये संग्रह करनेकी इच्छा नहीं रहती।

दूसरोंके दु:खमें दुखी होनेसे उसका दु:ख दूर करनेका विचार होगा। जैसे अपना दु:ख दूर करनेके लिये हम पैसे खर्च कर देते हैं, ऐसे ही दूसरेका दु:ख दूर करनेके लिये हम पैसे खर्च कर देंगे। हम अधिक संग्रह नहीं कर सकेंगे। यदि संग्रह अधिक हो भी जायगा, तो उसमें अपनापन नहीं रहेगा कि यह तो सबकी वस्तु है। इसीलिये भागवतमें आया है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(७।१४।८)

'जितनेसे पेट भर जाय, उतनी ही वस्तु मनुष्यकी है। अभिप्राय यह है कि जितनेसे भूख मिट जाय, उतना अन्न; जितनेसे प्यास मिट जाय, उतना जल; जितनेसे शरीरका निर्वाह हो जाय, उतना कपड़ा और मकान—यह अपना है। इसके सिवाय अधिक अन्न है, जल है, वस्त्र है, मकान है, निर्वाहकी अधिक सामग्री है, उसे जो अपना मानता है—अपना अधिकार जमाता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलेगा। वह कहता है कि हम किसीसे लाये नहीं, यह तो हमारी है। पर वह हमारी कैसे? क्योंकि जब जन्मे, तब एक धागा साथ लाये नहीं और जब मरेंगे, तब एक कौड़ी साथ जायगी नहीं। अत: हमारे पास जो अधिक सामग्री है, वह उसकी है, जिसके पास उस सामग्रीका अभाव है। जो दूसरोंके दु:खसे दुखी होता है, वह अपने सुखके लिये भोग और संग्रहकी इच्छा नहीं करता। उसमें करुणाका, दयाका भाव पैदा होता है। करुणामें जो रस है, आनन्द है, वह भोगोंमें नहीं है।

यह जो आप संग्रह करते हैं, इसका अर्थ है—निर्दयता, भीतरमें दया नहीं है। जहाँ दया होती है, वहाँ अपने सुखके लिये संग्रह नहीं होता। क्यों नहीं होता? क्योंकि उसे ऐसे ही आनन्द आता है। संग्रहमें जो सुख होता है, उसमें राजसी और तामसीपना होता है। दूसरोंके सुखमें जो सुख होता है, वह सुख संग्रहमें और भोगोंमें परिणत नहीं होता। उस सुखमें बड़ा भारी आनन्द होता है।

जिसका दूसरोंको सुख पहुँचानेका भाव है, वह दूसरोंको दुखी देखकर आप सुख भोग ले—यह हो ही नहीं सकता। पड़ोसमें रहनेवालोंको अन्न न मिले और हम बढ़िया-बढ़िया भोजन बनाकर खायें—यह अच्छे हृदयवालोंसे नहीं होगा। उन्हें भोजन अच्छा ही नहीं लगेगा; परंतु जिनका स्वभाव दूसरोंको दु:ख देनेका है, वे दूसरोंके दु:खसे क्या दुखी होंगे? वे तो दूसरोंका दु:ख देखकर सुखी होते हैं। जो अपने सुखके लिये दूसरोंको दुखी बना देते हैं, अपने मानके लिये दूसरोंका अपमान करते हैं, अपनी प्रशंसाके लिये दूसरोंकी निन्दा करते हैं, अपने पदके लिये दूसरोंको पदच्युत करते हैं, वे मनुष्य कहलानेयोग्य भी नहीं हैं, मनुष्य तो हैं ही नहीं। वे तो पशु हैं। पशु भी ऐसे निकम्मे कि न सींग हैं, न पूँछ है। जिसके सींग और पूँछ न हो, वह भद्दा पशु होता है। उनका ढाँचा तो मनुष्यका है, पर स्वभाव पशुका है। पशु-पक्षी तो अपने पापोंका फल भोगकर शुद्ध होते हैं, पर दूसरोंको दु:ख देनेवाले नये-नये पाप करके नरकोंका रास्ता तैयार करते हैं। रामायणमें आया है—

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

(मानस ५।४५।४)

'अपने सुखसे सुखी और अपने दु:खसे दुखी होना दुष्टता है। नरकोंमें निवास भले ही हो जाय, पर ऐसे दुष्टोंका संग विधाता न दे।' नरकोंमें जितना निवास होगा, जितना नरक भोगेंगे, उतने हमारे पाप कट जायँगे और हम शुद्ध हो जायँगे; परंतु ऐसे दुष्टोंका संग करनेसे नये-नये नरक भोगने पड़ेंगे।

पशु दूसरोंको दु:ख देनेपर भी पापके भागी नहीं बनते; क्योंकि पाप-पुण्यका विधान मनुष्यके लिये ही है। पशु-पक्षी दु:ख देते हैं तो अपने खानेके लिये देते हैं। वे खा लेंगे तो फिर आपको तंग नहीं करेंगे। वे अपने सुखभोगके लिये, संग्रहके लिये आपको तंग नहीं करेंगे, कष्ट नहीं देंगे, परंतु मनुष्य लाखों-करोड़ों रुपये कमा

लेगा, तो भी दूसरोंको दु:ख देगा और दु:ख देकर अपना धन बढ़ाना चाहेगा, अपना सुख बढ़ाना चाहेगा। अत: वह मनुष्य कहलानेयोग्य नहीं है। वह तो पशुओंसे और नरकोंके कीड़ोंसे भी नीचा है! मनुष्य-जीवन मिला है शुद्ध होनेके लिये, निर्मल होनेके लिये, परंतु जो दूसरोंको दु:ख देते हैं, वे पाप कमाते हैं, जिसका परिणाम बहुत भयंकर होगा।

जिसके अन्त:करणमें दूसरोंको सुखी देखकर प्रसन्नता और दूसरोंको दुखी देखकर करुणा पैदा नहीं होती, उसका अन्त:करण मैला होता है। मैला अन्त:करण नरकोंमें ले जाता है। पशुका अन्त:करण ऐसा मैला नहीं होता। पशु भोगयोनि है, कर्मयोनि नहीं है। वह अपने सुखके लिये दूसरोंको दु:ख नहीं देता। वह किसी प्राणीको मारकर खा जाता है तो केवल आहार करता है, सुख नहीं भोगता; परंतु मनुष्य शौकसे अच्छी-अच्छी वस्तुएँ बनाकर खाता है, उसमें स्वादका सुख लेता है तो वह पाप करता है। अत: दूसरोंके सुखसे सुखी होना और दूसरोंके दु:खसे दुखी होना ही सच्ची मनुष्यता है। मनुष्यमात्रको अपने भीतर हरदम यह भाव रखना चाहिये कि सब सुखी कैसे हों? उनका दु:ख कैसे मिटे?

कहानी—

उधार

(श्रीशिवभगवानजी पारीक)

बाहर बारिश हो रही थी, तभी टीचरने बच्चोंसे पूछा—अगर तुम सभीको १००-१०० रुपये दिये जायँ तो तुम सब क्या-क्या खरीदोगे?

किसीने कहा—मैं वीडियो गेम खरीदूँगा।

किसीने कहा—मैं क्रिकेटका बैट खरीदूँगा।

किसीने कहा—मैं अपने लिये प्यारी-सी गुड़िया खरीदूँगी।

तो, किसीने कहा—मैं बहुत-सी चाकलेट्स खरीदूँगी।

एक बच्चा कुछ सोचमें डूबा हुआ था।

टीचरने उससे पूछा—तुम क्या सोच रहे हो, तुम क्या खरीदोगे?

बच्चा बोला—टीचरजी, मेरी माँको थोड़ा कम दिखायी देता है, तो मैं अपनी माँके लिये एक चश्मा खरीदूँगा।

टीचरने पूछा—तुम्हारी माँके लिये चश्मा तो तुम्हारे पापा भी खरीद सकते हैं, तुम्हें अपने लिये क्या कुछ नहीं खरीदना?

बच्चेने जो जवाब दिया, उससे टीचरका भी गला भर आया।

बच्चेने कहा—सर! मेरे पिताजी अब इस दुनियामें नहीं हैं, मेरी माँ लोगोंके कपड़े सिलकर मुझे पढ़ाती हैं, और कम दिखायी देनेकी वजहसे वे ठीकसे कपड़े नहीं सिल पाती हैं, इसीलिये मैं अपनी माँको चश्मा देना चाहता हूँ। ताकि मैं अच्छेसे पढ़ सकूँ, बड़ा आदमी बन सकूँ, और माँको सारे सुख दे सकूँ।

टीचर—बेटा! तेरी सोच ही तेरी कमाई है। ये १०० रुपये मेरे वादेके अनुसार और ये १०० रुपये और उधार दे रहा हूँ। जब कभी कमाओ तो लौटा देना और मेरी इच्छा है, तू इतना बड़ा आदमी बने कि तेरे सरपर हाथ फेरते समय मैं धन्य हो जाऊँ।

२० वर्ष बाद···· बाहर बारिश हो रही है, और अन्दर क्लास चल रही है। अचानक स्कूलके आगे जिला कलेक्टरकी बत्तीवाली गाड़ी आकर रुकती है। स्कूल स्टॉफ चौकन्ना हो जाता है। स्कूलमें सन्नाटा छा जाता है। मगर ये क्या?

जिला कलक्टर एक वृद्ध टीचरके पैरोंमें गिर जाते हैं, और कहते हैं—सर! मैं उधारके १०० रुपये लौटाने आया हूँ। पूरा स्कूल स्टॉफ स्तब्ध!

वृद्ध टीचर झुके हुए नौजवान कलेक्टरको उठाकर भुजाओंमें कस लेता है, और रो पड़ता है!

दोस्तो—

मशहूर हो, मगरूर मत बनना
साधारण हो, कमजोर मत बनना
वक्त बदलते देर नहीं लगती····
शहंशाहको फ़कीर, और फकीर को
शहंशाह बनते, देर नहीं लगती····

[प्रेषक—श्रीरामजी पारीक]

'जीवन सफल ही नहीं—सार्थक भी हो'

(श्रीविष्णुप्रकाशजी बड़ाया, एम०ए०, एम०एड०)

परिवारमें जन्म लेकर व्यक्ति धीरे-धीरे बृहत् इकाई समाजका अंग कहलाता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे वह समाजके अनुसार ढलता रहता है। उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्वमें निखार आने लगता है। समाज इस अवस्थाका आकलन करने लगता है। हम यह न भूलें कि पारिवारिक दायित्वके साथ-ही-साथ हमारा सामाजिक दायित्व भी होता है। भौतिक सुख-सुविधाएँ एवं उपलब्धियाँ प्राप्तकर अपने-आपको सफल मान लेना जीवनमें एकांगी पक्ष है। अपने राष्ट्रके प्रति भी हमारा कर्तव्य होता है। यह दायित्व-बोध ही हमें कर्तव्य-पालनके लिये सदैव प्रेरित करता है। कर्तव्यपालन तभी सम्भव हो पाता है, जब हमारा चिन्तन और मनन इस ओर उन्मुख होता भी रहे। इन्हीं संकल्पनाओंको सजीव करनेके लिये कवि गोपालदास 'नीरज'का संदेश है—

छिप-छिप अश्रु बहाने वालों, मोती व्यर्थ बहाने वालों।
कुछ सपनों के मर जाने से, जीवन नहीं मरा करता है॥
लाख करे कोशिश पतझड़ पर, उपवन नहीं मरा करता है।
चंद खिलौनों के खोने से, बचपन नहीं मरा करता है॥

कविका आशय है—***जिन्दगी जिन्दादिलीका नाम है।*** जो जिन्दादिल है, उसे ही जीनेका अधिकार है।

उक्त चिन्तनको हम तीन आयामोंमें देखते हैं—

(१) सफल जीवन, (२) सार्थक जीवन, (३) सन्तुलित जीवन।

(१) सफल जीवनकी संकल्पना—विद्यार्थी किसी परीक्षामें ९० प्रतिशत या १०० प्रतिशत अंक प्राप्त कर लेता है। वरीयता सूचीमें नाम आ जानेपर किसी प्रतियोगितामें विजयी हो जाता है। किसी साक्षात्कारमें चयन हो जानेपर अच्छा पद प्राप्त कर लेता है। पुरस्कार प्राप्त करनेपर पीठ थपथपायी जाती है। सफलताके अनेक मापदण्ड हैं। ध्यान रहे कि यह सफलता हमारे व्यक्तिगत लाभके लिये ही है, जिससे हमें पद-प्रतिष्ठा और धनराशिमात्र मिल जाती है। किंतु हमारे समाजकी भी हमसे अनेक अपेक्षाएँ होती ही हैं। विद्वज्जन कहते हैं कि व्यक्तिगत सफलताके पश्चात् हमें आगे भी सोचना चाहिये, तभी जीवन सार्थक है, अन्यथा हम जीवनको अधूरा ही समझें।

(२) सार्थक जीवनकी संकल्पना—ज्ञानीजन कहते हैं कि हमारा जीवन दूसरोंके लिये भी उपयोगी होना ही चाहिये। यह तभी सम्भव होगा, जब हम सेवा और परोपकारमें भी लगें। इसके बिना जीवन सार्थक नहीं होगा। महर्षि वेदव्यासजीका सन्देश है—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

सार यह है कि जीवन परोपकारके लिये हो। परोपकारकी परम्परागत सोचको नयी दृष्टिसे देखते हुए कवि श्रीरामनरेश त्रिपाठीका कथन है—

ना मन्दिर में, ना मस्जिद में, ना गिरिजे के आस-पास में।
खोज ले कोई राम मिलेंगे, दीन जनों की भूख-प्यास में॥

इसी परिप्रेक्ष्यमें स्वामी विवेकानन्दजीका संदेश है—'हमारा एकमात्र जाग्रत् देवता हमारा भारत है। इस विराट्‌की पूजा ही हमारी मुख्य पूजा समझें। सबसे पहले जिस देवताकी पूजा करेंगे, वह है हमारा भारतवासी। अनपढ़ और निर्धन देशवासी ही हमारे ईश्वर हैं। उनकी सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है, इसे ही कहा गया है—'नर सेवा-नारायण सेवा'। अतः हम स्वयं विचार करें कि जीवन सार्थक बनानेके लिये हमारा दायित्व क्या है और उसका निर्वहन कैसे होगा?

(३) सन्तुलित जीवन—सन्तुलित जीवनसे आशय है—हमारा आदान-प्रदान सन्तुलित हो। आदानका अर्थ है, प्राप्त कर लेना, ग्रहण करना, स्वीकार करना और प्रदानसे आशय है, देते रहना। मनुष्यका स्वभाव है कि वह अधिकाधिक लेना चाहता है, परंतु सन्तोंका निष्कर्ष है—

जो मिला है वह हमेशा पास रह सकता नहीं।
कब बिछुड़ जायेगा कोई, राज कह सकता नहीं॥

अतः ध्यान रहे कि हमारे धन-सम्पत्ति, सारे वैभव, भौतिक सुख-सुविधाएँ जो आज हमें प्राप्त हैं, वे कल हमारे पास रहेंगी या नहीं, इसके लिये विधिका विधान तय करता है। ज्ञानीजन कहते हैं कि जो संग्रह हमने कर लिया है, उसमेंसे दूसरोंको भी देते रहें। उनको भी सहभागी बनायें। यही है प्रदानका भाव। अतः आदान-

प्रदानमें न्यायोचित संतुलन बिठायें। दीन-दुखी, निर्धन, भूखे, अभावग्रस्त सब आपको निहार रहे हैं। सन्तोंका संदेश है ***'बाँटके खाय-बैकुण्ठमें जाय।'*** निर्णय हमें ही करना है। अपने ज्ञान-कौशल, अपनी योजक बुद्धि आदिके द्वारा दूसरोंकी सेवा कर सकें। सामर्थ्यवान् लोग योजनापूर्वक दूसरोंको ऊँचा उठानेका प्रयास करें। ऐसा करनेपर हमें आत्मसन्तुष्टि होगी, तभी जीवनका सार्थक होना समझा जायगा।
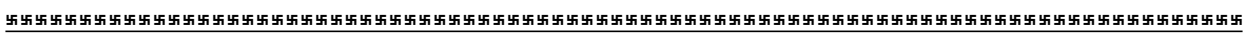
निष्कर्ष यह है कि हमारे देशमें महापुरुषोंकी यह गौरवमयी परम्परा रही है। उन्होंने अपना जीवन मातृभूमिकी सेवामें अर्पण कर दिया और भाव रहा है—

जीवन पुष्प चढ़ा चरणों में, माँगें मातृभूमिसे यह वर।
तेरा वैभव अमर रहे माँ, हम दिन चार रहें न रहें॥

यह गौरवमयी परम्परा नयी पीढ़ीमें सजीव रह सके—यह तभी सम्भव है, जब हम अपने-आपको तिल-तिलकर मातृभूमिकी सेवामें अर्पण कर दें। केवल कमियाँ ही निकालते न रहें, गरीबी है, भुखमरी है कहते ही न रहें, वरन् सोचें कि अब हमारा कर्तव्य क्या है? किसी शायरने कहा है—

हमने माना कि देश में अन्धकार घना है।
पर यह बतायें कि क्या आपको दीपक जलाना मना है॥

गीता-प्रसंगमें भगवान्ने हमें समझा दिया है कि मनुष्य क्या करे और कैसे करे।

किसी शायरने कहा है—

तू करता वही है जो तू चाहता है,
पर होता वही है जो मैं चाहता हूँ।
तू कर वही जो मैं चाहता हूँ,
फिर होगा वही जो तू चाहता है॥

इसी भावको समझानेके लिये फिर कहा है—

सारे जहाँ के मालिक, तेरा ही आसरा है।
राजी हैं हम उसी में, जिसमें तेरी रजा है।

ज्ञानीजन फिर कहते हैं कि यदि अब भी हमने ध्यान नहीं दिया और समय टालते ही चले गये, तो जो स्थिति होगी, उसे भी समझ सकें।

सुबह होती है शाम होती है,
ऐसे ही जिन्दगी तमाम होती है।

अतः हम स्वयं निर्णय करें कि जीवनको सफलताके पश्चात् सार्थक बना सकनेके लिये क्या करें? यदि जीवन सार्थक नहीं हो सका, तो संसारमें आना और चले जाना मात्र एक श्रम ही होगा। संकल्प लेकर जीवन जियें और साध्यके लिये साधनोंको समर्पित कर दें।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तका खरा-खरा संदेश है—

यही पशु-प्रवृत्ति है कि आप-आप ही चरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे॥

'ईश्वरकी दृष्टि सदैव तुम्हारे ऊपर रहती है'

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

प्रज्ञाचक्षु स्वामी शरणानन्दजी महाराज जन्मसे ही नेत्र-विहीन थे, वे भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त थे, इन्होंने मानव-सेवा-संघकी स्थापनाकर समाजके भूले-भटके युवकोंको सही दिशा प्रदान की थी। एक दिन उन्होंने अपने शिष्योंसे वृन्दावनमें श्रीबाँकेबिहारीजीके दर्शन करानेकी इच्छा प्रकट की। शिष्य उनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये श्रीबिहारीजीके मन्दिरमें पहुँच गये। मन्दिरके प्रांगणमें भारी भीड़ थी। उसी भीड़के बीचसे झुँझलाहटभरे स्वरमें कोई व्यक्ति चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था, अन्धे आदमीको यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता थी, जबकि वह भगवान्को देख नहीं सकता, दूसरेने कहा, इसने यहाँ आकर भीड़ ही बढ़ाई है, तीसरेने कहा, अच्छा होता यदि ये अपने घरपर ही रहते। इतना सुनकर स्वामीजीका हृदय चीत्कार कर उठा। वे कहने लगे, आप सत्य कह रहे हैं, मैं अन्धा ही हूँ, परंतु मेरा भगवान् तो अन्धा नहीं है, वह निश्चय ही मुझे देख रहा है। मेरे प्रिय बच्चो, भगवान्के प्रति श्रद्धा होनी चाहिये, वह सर्वज्ञ है। वह पल-प्रतिपल तुम्हारे भावोंसे परिचित रहता है। सन्तके मुखसे ऐसे प्रिय वचन सुनकर वे युवक उनके चरणोंमें गिर पड़े और अपने वचनोंके प्रति क्षमा-याचना करने लगे।

सुखकी खोजमें

(श्रीरूपचन्दजी शर्मा)

हरेक प्राणी सुख चाहता है। भले ही वह इस भावको प्रकाशित न करे, पर मनमें सुख पानेकी इच्छा बनी रहती है। अनुकूल समय आनेपर वह इसे पानेके लिये जागरूक होकर कोशिश करने लगता है।

सुखका सम्बन्ध मनोविज्ञानसे है। इसकी सीमा व्यापक है। इसकी अनुभूति कई प्रकारसे होती है। इन्द्रियोंके सुखके लिये मनुष्यकी आँखें चाहती हैं कि सुन्दर दृश्य देखें, कानकी रुचि मधुर गीत सुननेमें है। जिह्वाको स्वाद चाहिये। नाककी रुचि सुगन्धमें है।

कुछ लोग मादक वस्तुओंके प्रयोगमें सुखका अनुभव करते हैं। कुछ लोग वातानुकूलित वातावरणमें पड़े रहनेमें और कुछ बिस्तरपर आराम करनेमें अपनेको सुखी मानते हैं। मनुष्यकी तृष्णा कभी पूरी नहीं होती। भव्य मकान बनानेसे, बहुमूल्य वाहन खरीदनेसे, नौकरी पाकर उच्च पदपर प्रतिष्ठित होकर भी उसको जिस सुखकी अनुभूति होती है, वह क्षणिक है, अस्थायी और नश्वर है।

जो भी व्यक्ति सांसारिक वस्तुओंको पाकर सुखी होना चाहता है, उसे कभी सच्चा स्थायी सुख नहीं मिलता। हम सभी माया-मोहमें पड़े हैं। हमारा चिन्तन—

सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयेत्।

—पुत्र, पत्नी और धनकी चिन्तामें डूबा रहता है और ऐसा व्यक्ति परम शान्तिको नहीं पा सकता।

चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा।

जिस व्यक्तिको परिवार, धन और सम्पत्तिकी चिन्ता लगी रहती है, उसको न सुख मिलता है, न रातको नींद ही आती है।

स्वामी रामसुखदासजी कहते हैं—'संसारका आकर्षण मिटानेका उपाय है—दूसरोंको सुख देना। दूसरेको सुख देनेसे अपने सुखकी वृत्ति मिट जाती है।'

जो लोग भोग और ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, उनकी बुद्धि मलिन है। ऐसी बुद्धिमें आत्माका सुख नहीं आता। उनकी श्रद्धा नहीं टिकती।

मनुष्यके मनमें जबतक संसारकी कोई भी इच्छा रहती है, तबतक समझना कि वह बन्धनमें है। सांसारिक इच्छाओंके छूटनेसे मनुष्य मुक्तात्मा हो जाता है।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

(अध्यात्मरामायण २।६।६)

सुख और दुःखको देनेवाला कोई व्यक्ति नहीं है। जो यह कहता है कि मैंने उसको मजा चखा दिया, वह दुर्बुद्धि है। जो अपनेको सुख-दुःख देनेवाला मानता है, वह भी झूठा अभिमान है। वास्तविकता यह है कि हरेक मनुष्य कर्मके सूत्रमें बँधा हुआ है और कर्म भोगे बिना कभी खतम नहीं होते। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सबु भ्राता॥

(रा०च०मा० २।१२।४)

आगे चलकर गोस्वामीजी कहते हैं—

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

पुण्य कर्मोंसे सुख और पापकर्मोंसे दुःखका प्राप्त होना स्वाभाविक है। सुख पानेके उपक्रममें दुःख मिलता है। दुःख बिना प्रयत्न किये ही मिलता है। इसी प्रकार सुख भी प्रारब्धके अनुसार बिना प्रयत्नके मिलता है। सुख-दुःखका चक्र हर व्यक्तिके जीवनमें चलता रहता है।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

समस्त कर्म चाहे शुभ हों या अशुभ हों, अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। यहाँ यह कहना उचित ही होगा कि बुरे कर्मोंका नाश तीन प्रकारसे होता है—

१-प्रायश्चित्तके द्वारा, २-भोगनेसे और ३-भगवत्कृपाजनित ज्ञान अथवा भक्तिसे।

सारा खेल मनका है। **अशान्तस्य कुतः सुखम्?** जबतक मन अशान्त है, तबतक जीव सुखी नहीं रहता। ऋषि-मुनियोंका कहना है कि यदि स्थायी सुख और शान्ति चाहते हो तो प्रभुकी शरणमें जाओ।

वाल्मीकि-जयन्तीपर विशेष—

महर्षि वाल्मीकि

(प्रो० श्रीप्रभुनाथजी द्विवेदी)

वन्दे प्राचेतसं नित्यं वाल्मीकिं मुनिपुंगवम्।
निर्ममे रामकाव्यं यः सीतायाश्चरितं महत्॥
पात्रीभूय स्वयं तत्र गर्भाङ्कुरं ररक्ष सः।
रामान्वयस्य सीतायां महात्मा समुदारधीः॥
तपःस्वाध्यायनिरतो धर्मनिष्ठः शुचिव्रतः।
रम्यं रामायणं कृत्वा यशो लेभे सनातनम्॥

महर्षि वाल्मीकि लौकिक संस्कृत साहित्यके आदिकवि हैं और उनके द्वारा प्रणीत रामायण संस्कृतका आदिकाव्य माना जाता है। आर्ष (ऋषिप्रणीत) महाकाव्योंमें रामायणकी गणना प्रथम स्थानीय है। महर्षि वाल्मीकि उन विश्वकवियोंमें अग्रणी हैं, जिनकी कविता एक देश-विशेषके ही मनुष्योंका मंगल-विधान नहीं करती और न ही किसी कालविशेषके प्राणियोंका मनोरंजन करती है। रामायण सार्वदेशिक और सर्वकालिक है। वह चिरपुराण है और चिरनूतन भी। रामायण एक धर्मशास्त्र है, महाकाव्य है और एक इतिहासग्रन्थ भी है। ऐसे पवित्र और महनीय ग्रन्थके प्रणेता महर्षि वाल्मीकिके भौतिक परिचयसे हम प्रायः अनभिज्ञ हैं। हमें उनके स्थितिकालका ज्ञानमात्र इतना ही है कि वे त्रेतायुगमें अवस्थित थे और भगवान् रामके समकालिक थे। उनका कोई एक नियत वासस्थान (आश्रम) नहीं था, अपितु अनेक वाल्मीकि-आश्रमोंका उल्लेख हमें प्राचीन ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है।

महर्षि वाल्मीकिके आरम्भिक जीवनके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती बहुत प्रसिद्ध है। ये वनप्रान्तमें निवास करनेवाले एक लुटेरे थे। यात्रियोंको लूटकर जो धन प्राप्त करते थे, उसीसे अपने परिवारका भरण-पोषण करते थे। उनका नाम 'रत्नाकर' कहा जाता है। एक दिन क्रूर रत्नाकरने कुछ संन्यासियोंको लूटनेकी नीयतसे पकड़ा। संन्यासियोंने कहा—'अरे भले आदमी, हमारे पास तो कोई धन-दौलत नहीं है, किंतु यह बताओ कि जिस पापकर्मके द्वारा तुम अपने परिवारका पोषण करते हो, क्या वे तुम्हारे इस पापके भागी होंगे?'

रत्नाकरने कहा कि यह तो मुझे नहीं मालूम। तुम लोग रुको, मैं अपने परिवारसे पूछकर बताता हूँ। ऐसा कहकर और उन लोगोंको बाँधकर (कि कहीं वे लोग भाग न जायँ) वे अपने परिवारसे उस प्रश्नका उत्तर पूछने चले गये। परिवारवालोंने कहा कि हमारे पालनका दायित्व आपपर है। आप इसे कैसे करते हैं—इससे हमें कोई मतलब नहीं। आपके द्वारा किये गये पाप या पुण्यसे हमें कुछ भी लेना-देना नहीं है। पापका भागी हम क्यों बनें? रत्नाकरकी आँखें खुल गयीं। वह भागा-भागा उन संन्यासियोंके पास आया और उनके बन्धन खोलकर पैरोंमें गिर पड़ा, आर्तस्वरमें बोला—'मेरा उद्धार कीजिये। मैंने बहुत पाप किये हैं।' संन्यासियोंने उसे करुणापूर्वक उठाया और उपदेश दिया—'राम-राम जपो।' किंतु हीनवृत्तिका होनेके कारण वह 'राम-राम'का उच्चारण न कर सका। तब उन्होंने उसे 'मरा-मरा' कहनेका उपदेश दिया। यह उच्चारण उसके लिये सहज था। उसने निरन्तर 'मरा-मरा'का उच्चारण आरम्भ किया, निरन्तर गतिसे उच्चारण करने पर 'मरा', 'राम' ही हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदासने इसी ओर संकेत किया है—

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

संन्यासीगण उपदेश देकर चले गये और इधर वह लुटेरा रत्नाकर परिवारका माया-मोह छोड़कर, एक आसनसे बैठकर 'मरा-मरा' अर्थात् 'राम-राम'का निरन्तर जप करते हुए एकाग्रचित्तताके कारण समाधिस्थ हो गया। उसे जडवत् पृथ्वीपर बैठे हुए पाकर दीमकोंने अपनी बाँबीकी मिट्टीसे ढँक दिया। सिद्ध होकर समाधिसे उठनेपर उसने अपनेको दीमकोंद्वारा मिट्टीसे ढँका हुआ पाया। फिर तो वही महर्षि वाल्मीकिके नामसे प्रसिद्ध हुआ (वाल्मीकिका अर्थ होता है दीमकोंकी बाँबी या मिट्टीका ढेर)।

महर्षि वाल्मीकि ब्राह्मण-कुलोत्पन्न थे। युवावस्थामें कुसंगतिमें पड़ जानेसे बर्बर लुटेरे हो गये थे, किंतु

सत्संगति और तपस्याके प्रभावसे ये एक सिद्ध महात्मा हो गये और महर्षि वाल्मीकिके नामसे प्रसिद्ध हुए।

कोशोंमें इनकी गोत्रसंज्ञा 'प्राचेतस' कही गयी है। पुराण भी इसका समर्थन करते हैं। 'प्रचेता' वरुणको कहते हैं।

महर्षि वाल्मीकि आदि महाकाव्य 'रामायण'के प्रणेता हैं। इसके साथ ही वे रामकथाके एक विशिष्ट और महनीय पात्र भी हैं। रामायणके अध्येता इस रामकथामें आदिसे अन्ततक महर्षि वाल्मीकिकी उपस्थितिका अनुभव करते हैं और यथावसर महर्षि वाल्मीकि अपनी सक्रिय भूमिका भी निभाते हैं।

शुद्ध अन्तःकरणवाले सिद्ध महर्षि वाल्मीकि आश्रम बनाकर शिष्योंसहित भगवती भागीरथी (गंगा)-से नातिदूर तमसा नदीके तटपर निवास करते थे। एक दिन देवर्षि नारद भ्रमण करते हुए उनके आश्रमपर पधारे। महर्षि वाल्मीकिने देवर्षिका यथाविधि पूजन-सत्कार किया। फिर दैव-प्रेरणासे उनके मनमें एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उन तपस्वी वाल्मीकिने लोक और शास्त्रमें पारंगत विद्वद्वरेण्य देवर्षि नारदसे पूछा—'भगवन्! इस समय संसारमें गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़संकल्पवाला कौन है? वह कौन पुरुष है, जो सदाचारपरायण, सभी जीवोंका हितसाधक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन अर्थात् सर्वसुन्दर है? मनको वशमें रखनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, कान्तिमान्, किसीकी भी निन्दा न करनेवाला—वह कौन है? युद्धमें कुपित होनेपर देवता भी जिससे डरते हैं? हे महामुने! ऐसे (इन गुणोंसे युक्त) व्यक्तिको जाननेके लिये मेरे मनमें तीव्र अभिलाषा है। आप ऐसे पुरुषको अवश्य जानते होंगे (क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं)। अतः मुझे बतलानेकी कृपा करें।[1]'

महर्षि वाल्मीकिके इस वचन (प्रश्न)-को सुनकर त्रिलोकज्ञ देवर्षि नारदने कहा कि हे महर्षे! आपने जिन दुर्लभ गुणोंसे युक्त पुरुषको जाननेकी अभिलाषा व्यक्त की है, वे इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न पुरुष हैं, जो रामके नामसे लोकविख्यात हैं।[2]

तत्पश्चात् देवर्षि नारदने महर्षि वाल्मीकिके सम्मुख श्रीरामके पावन चरित्र और चरितका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। ऐसे महापुरुषके सम्बन्धमें जानकर महर्षि वाल्मीकि बहुत प्रसन्न हुए। देवर्षि नारदने उन्हें श्रीरामका पूरा जीवन-चरित ही सुना डाला। महर्षि वाल्मीकिने देवर्षि नारदका अपने शिष्योंसहित श्रद्धापूर्वक पूजन किया।

उसी दिन कुछ समय पश्चात् महर्षि वाल्मीकि अपने दैनन्दिन क्रममें स्नानके लिये पवित्र तमसा नदीके तटपर गये, जो उनके आश्रमके समीप ही था। उनके साथ भरद्वाज नामक शिष्य थे। तमसाका निर्मल जल और स्वच्छ तट देखकर महर्षिने शिष्य भरद्वाजसे वल्कल वस्त्र ले लिये तथा प्रान्तवर्ती वनकी शोभाका अवलोकन करते हुए स्नानार्थ जलमें प्रवेश करनेवाले ही थे कि उन्होंने वहाँ क्रीडारत क्रौंचपक्षीका एक जोड़ा देखा। उसी समय एक व्याधने निशाना साधकर उसमेंसे एक पक्षीका वध कर दिया, जिससे शोकार्त क्रौंची करुण-क्रन्दन करने लगी। यह कारुणिक दृश्य देखकर

१-ॐ तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्। नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम्॥
को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्। धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥
चरित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः। विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः। कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे। देवर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम्॥
(वा० रामायण, बालकाण्ड, १। १—५)

२-बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः। मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः। नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥
(वा० रामायण, बालकाण्ड १। ७-८) इत्यादि

महर्षिका हृदय द्रवित हो उठा और उनके मुखसे उस व्याधके लिये शापभरे ये शब्द सहसा ही फूट पड़े[१]—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

(वा०रा०, बालकाण्ड २। १५)

अर्थात्, रे व्याध! तुझे आगे आनेवाले नित्य-निरन्तर दिनों (वर्षों)-में कभी शान्ति न मिले, क्योंकि तूने क्रौंचके इस जोड़ेमेंसे काममोहित एक पक्षीका अकारण वध कर दिया (वह तो निरपराध था), वह अदण्ड्य था।

अपने मुखसे निकले वाक्यके सम्बन्धमें तत्काल ही ध्यान आनेपर वे सोचने लगे कि 'अरे, इस पक्षीके शोकसे पीड़ित होकर मैंने यह क्या कह डाला!' ऐसा विचार करते हुए महर्षि वाल्मीकिके मनमें एक निश्चय हुआ और उन्होंने वहाँ अपने शिष्य भरद्वाजसे कहा—'वत्स, शोकसे पीड़ित हुए मेरे मुखसे जो वाक्य निकल पड़ा है, वह चार चरणोंमें आबद्ध है। इसे वीणाके लयपर गाया भी जा सकता है, अतः मेरा यह वचन श्लोकरूप होना चाहिये।' गुरुके मुखसे यह सुनकर समर्थन करते हुए शिष्य मुनि भरद्वाज बोले—'हाँ, आपका यह वाक्य निश्चय ही श्लोकरूपताको प्राप्त करता है।'

स्नान करके महर्षि वाल्मीकि आश्रममें आये थे कि उसी समय सृष्टिके निर्माता चतुर्मुख ब्रह्माजी वहाँ पधारे। उन्हें देखते ही महर्षि उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तत्पश्चात् पाद्य, अर्घ्य, आसन प्रदान करके स्तुतिपूर्वक उनकी सपर्या की तथा उनके चरणोंमें प्रणाम किया। भगवान् ब्रह्मा स्वयं आसनपर बैठे और महर्षिको बैठनेके लिये कहा। यह सब करते हुए भी महर्षि वाल्मीकिके चित्तमें क्रौंच पक्षीवाली दुर्घटना और उनके मुँहसे सहसा निकला हुआ वह शाप ही घूम रहा था। ब्रह्माजी उनकी मनःस्थितिको जानकर बोले—'ब्रह्मन्! तुम्हारा वह वचन छन्दोबद्ध श्लोक ही है। तुम्हारे माध्यमसे यह छन्दोमयी वाणीका नवावतार है। ऐसा मेरी प्रेरणासे ही सम्भव हुआ है। तुमने देवर्षि नारदके मुखसे जिन श्रीरामका चरित सुना है, उनका वर्णन इसी छन्दोमयी वाणीमें करो।[२] ऐसा करते हुए तुम्हें मेरे प्रभावसे श्रीरामके लोकपावन गुप्तचरित भी प्रकट हो जायँगे। इस काव्यमें अंकित कोई भी बात झूठी नहीं होगी। तुम्हारे द्वारा कही गयी यह रामकथा लोकमें सदा अक्षुण्ण रहेगी। तुम्हारी यह रामायण 'आदिकाव्य' कही जायगी और तुम भी 'आदिकवि' कहे जाओगे।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और महर्षि वाल्मीकिने रामायणका प्रणयन किया।

रामकथाके प्रणयनके माध्यमसे महर्षि वाल्मीकिने मानवजातिपर अनन्त उपकार किया है। आश्विनमासकी पूर्णिमा-तिथिको उनकी जयन्तीपर हम उन आदिकविका श्रद्धापूर्वक पावन स्मरण करते हैं।

१-इस घटनाका उल्लेख परवर्ती कवियों और आचार्योंने भी किया है—(क) महाकवि कालिदासकृत रघुवंश महाकाव्यमें—
'निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥' (१४।७०)
(ख) महाकवि भवभूतिने उक्त घटनाका वर्णन करते हुए उत्तररामचरित नाटकके द्वितीय अंकमें उक्त श्लोक—
'मा निषाद""""""॥' (२।५) यथावत् रख दिया है।
(ग) आचार्य आनन्दवर्धनने 'ध्वन्यालोक' में लिखा है (उद्योत प्रथम, कारिका ५)—
काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा। क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥

२-महाकवि भवभूतिने उत्तररामचरितम्के द्वितीय अंकमें (श्लोक ५ के पश्चात्) इस वृत्तान्तका संकेत किया है—
'तेन हि पुनः समयेन तं भगवन्तमाविर्भूतशब्दप्रकाशमृषिमुपगम्य भगवान् भूतभावनः पद्मयोनिरवोचत—'ऋषे प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि। तद् ब्रूहि रामचरितम्। अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभातु। आद्यः कविरसि।' इत्युक्त्वाऽन्तर्हितः।'
(अर्थात् तब उस समय भगवान् ब्रह्माने, शब्दब्रह्मका साक्षात्कार करनेवाले महर्षि वाल्मीकिसे आकर कहा—'हे ऋषि! तुम्हें शब्दब्रह्मका पूर्ण ज्ञान हो गया है। अतः रामके चरितका वर्णन करो। तुम्हारी निरन्तर प्रकाशवाली आर्ष दृष्टि प्रकट हो। तुम आदिकवि हो'—ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये।)

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ शरणागत भक्त भगवान्‌के भरोसे रहते हैं, जैसे प्रभु रखें, उसी तरह रहनेको तैयार रहते हैं। प्रभुका संसार है, प्रभुकी सृष्टि है। उसकी चिन्ता प्रभुको ही है। अपना कार्य प्रभुका चिन्तन करना है। वह भी प्रभुकी कृपासे होगा। अवश्य होगा।

❀ समर्पित जीव चिन्ता नहीं करता, उसे जैसे प्रभु रखें, उसी प्रकार वह रहना चाहता है। अपने-आपमें सन्तुष्ट रहनेवाले, जितना प्रभुने धन-जन दिया है, अपने कर्तव्यका पालन करते हुए उसमें पूर्ण सन्तुष्ट रहनेवाले धन्य हैं।

❀ साधक शरणागतको इस संसारमें इस प्रकार रहना चाहिये, जैसे पाणिग्रहणके बाद कन्या पिताके घर रहती है। पिताके घर रहकर सारे काम-काज करती है, पर वह मनमें पतिके घरको घर मानकर रहती है। यहाँके बाद उसे अपने घर जाना है, ऐसा दृढ़ चिन्तन करती है। इसी प्रकार इस जगत्‌में रहना चाहिये, सब कुछ करना चाहिये, पर यह मनमें मानना चाहिये कि यह संसार मेरा अपना घर नहीं है। यहाँ थोड़े दिन रहकर परमपिता परमात्माके पास जाना है। वही अपने निज हैं, इस विश्वास-सम्बन्धसे जीव ईश्वरका बन जाता है। प्रभु उसे अपना लेते हैं।

❀ भगवन्नाम-स्मरण एवं शरणागति ही सभी संकटोंसे बचनेके लिये श्रेष्ठतम साधन है। धैर्य धारण करना ही श्रेष्ठ है। दुःख एवं सुख दिन-रातकी तरह आने-जानेवाले हैं। सर्वदा कोई सुखी या दुखी नहीं रहता है। स्वयं भगवान् अवतारकालमें संकट सहकर अपने भक्तोंको शिक्षा देते हैं।

❀ सभी प्राणियोंमें परमात्मा हैं, इसलिये इनके प्रति दया, क्षमामय व्यवहार करना चाहिये। किसी प्राणीका निरादर करना ईश्वरका निरादर करना है। जब ऐसा भाव आ जायगा, तब ईश्वरकी कृपाका अनुभव होगा। अपनेको सबसे छोटा मानो, अहंकार मत करो। धनका होना अच्छा है, पर धनका अहंकार अच्छा नहीं है। दीनोंपर भी भगवान्‌की दया होती है। अपने दोषोंको देखो और दूसरेके गुणोंको देखो। भगवान्‌के भरोसे रहो। हानि-लाभ, जीवन-मरण सब कुछ ईश्वरकी कृपासे भाग्यसे होता है। दिन-रातकी तरह सुख-दुःख आने-जानेवाले हैं, अतः निश्चिन्त रहो, जय श्रीराधे।

❀ संसारका कोई दुःख आता है तो उसे धैर्यपूर्वक सहन करनेकी आवश्यकता है। एक-न-एक दिन दुःखका अन्त होगा। भगवद्-इच्छासे सारी प्रकृति अनुकूल हो जाती है। भजनानन्दीके भजनमें बाधा आती है, तो वह दृढ़तासे प्रभुकी शरण ग्रहण करता है। प्रभुका दिया दुःख है। उसका आदर करना चाहिये। पाण्डवोंके, द्रौपदीके दुःखको देखो, वैसे दुःख हमपर नहीं हैं। रामजीके ऊपर, राजा नलके ऊपर कैसा दुःख पड़ा, उसे देखो और भगवान्‌की कृपाका अनुभव करो। प्रभु सब संकट दूर करेंगे।

❀ गीतामें संसारको दुःखालय अशाश्वत कहा गया है। दुःखोंका स्थान है और एक-सा रहनेवाला नहीं है, बदलता ही रहता है। संसारसे अलग हटकर संसारको समझा जा सकता है। भगवान्‌के निकट रहकर उनमें मन लगाकर भगवान्‌को समझा जा सकता है। कष्ट आता है प्रभुकी याद दिलानेके लिये। जो भी कष्ट हमको मिल रहा है, वह मेरे कर्मोंके फलस्वरूप ही मिल रहा है, दूसरा कोई हमको सुख-दुःख देनेवाला नहीं है। अपना मन संसारमें आसक्त होता है तो दुखद होता है, संसारसे विरक्त हो जाय तो मन सुखोंका दाता है।

❀ नित्य सन्तके पास सत्संग-सभामें उपस्थित रहनेसे भक्त-भगवान्‌की चर्चा सुनते-सुनते धीरे-धीरे मनका मैल दूर होगा। अपने जीवनमें कोई सुधार प्रत्यक्ष न भी दिखायी पड़े तो भी सत्संगको व्यर्थ नहीं समझना चाहिये। अनजाने हमारा अज्ञान कम हो रहा है। आगे चलकर अनुभव होगा। सत्संगमें रहते हैं तो उतनी देर कुसंगसे बचते हैं। यह सबसे बड़ा लाभ है। सज्जनके साथ रहना, उससे प्रभुकथाका श्रवण करना, सुने हुएको याद रखना, उसका अभ्यास करके उसे अपने जीवनमें उतारना चाहिये। तब मन-बुद्धिपर असर पड़ेगा। [**'परमार्थके पत्र-पुष्प' से साभार**]

प्रेरक-प्रसंग—

रक्षाबन्धन

(श्रीराजेशजी माहेश्वरी)

मेरी इन्दिरा नामकी एकमात्र बहनके स्वास्थ्यमें अचानक गिरावट आने लगी थी और वह दिनोंदिन कमजोर होती जा रही थी। चिकित्सकोंके द्वारा भी सभी तरहसे इलाज किया गया, परंतु दुर्भाग्यवश उसके प्राण नहीं बच सके। उसकी मृत्युके बाद मैंने भावावेशमें राखीका पर्व मनाना बन्द कर दिया। एक दिन मैं पानकी दुकानपर खड़ा था, तभी अचानक ही एक युवा व्यक्ति जो कि मोटरसाइकिलपर सवार था, एक गायको बचानेके प्रयासमें सन्तुलन खो बैठा और रोड डिवाइडरसे टकराकर जमीनपर गिर गया। यह दृश्य देखकर आसपासके सभी लोग उसकी ओर दौड़ पड़े। वह अर्धमूर्च्छित हो चुका था और उसके शरीरसे काफी खून बह रहा था। उस भीड़में-से किसीने कहा कि उसने इस दुर्घटनाकी सूचना एम्बुलेंस सर्विस नं० १०८ पर दे दी है और शीघ्र ही एम्बुलेंस आती होगी।

हम सभी एम्बुलेंसके आनेका इन्तजार कर रहे थे, परंतु जब दस मिनट बीत गये और एम्बुलेंस नहीं आयी तो मैंने आगे बढ़कर उस घायल व्यक्तिको अन्य लोगोंकी सहायतासे अपनी कारकी पिछली सीटपर लिटा दिया और तुरंत गाड़ी लेकर मैं निकटके अस्पताल पहुँच गया। वहाँपर उपस्थित चिकित्सकोंने भी तुरंत बिना समय गँवाये आपातकालीन कक्षमें ले जाकर उसका उपचार प्रारम्भ कर दिया। मैं वहाँपर आधे घंटे इन्तजार करता रहा और तभी चिकित्सकोंने मुझे बाहर आकर बताया कि आप यदि १० मिनट और देर कर देते तो इस व्यक्तिका बचना बहुत मुश्किल हो जाता। अब वह खतरेसे बाहर है और उसे पूर्णरूपसे स्वस्थ होनेमें समय लगेगा। अभी वह बेहोश है, परंतु दो-से-तीन घंटेमें उसे होश आ जायगा। वहाँके चिकित्सा-अधिकारीने उस व्यक्तिके परिजनोंको सूचित करनेके लिये वहाँपर उपस्थित स्टॉफको आदेशित किया।

इसके लगभग २० मिनटके बाद ही उसके माता-पिता एवं एक नवविवाहिता महिला घबराये हुए, बदहवाससे आँखोंमें आँसू लिये हुए आये। वहाँपर उपस्थित चिकित्सकोंने उसके परिवारजनोंको बताया कि अब उनका बेटा खतरेसे बाहर है और यदि ये सज्जन सही समयपर उसे यहाँ लेकर नहीं आते तो उसके प्राण बचाना मुश्किल हो जाता। यह जाननेके बाद वे सभी मेरे प्रति हृदयसे कृतज्ञता व्यक्त कर रहे थे। मैंने उन्हें ढाँढस बँधाते हुए उस व्यक्तिकी प्राणरक्षाके लिये ईश्वरको धन्यवाद करनेके लिये कहा। उनसे बातचीतके दौरान मैं यह जानकर हतप्रभ रह गया कि यह उनका इकलौता लड़का है, जिसका पिछले माह ही विवाह सम्पन्न हुआ था। उनकी बहू जिसका नाम निशा था, मेरी सूनी कलाई देखकर बोल पड़ी कि आज राखीके दिन आपकी कलाईपर राखी क्यों नहीं है? मैंने उसे बताया कि मेरी बहनकी असामयिक मृत्युके कारण मैं राखीका पर्व नहीं मनाता हूँ।

यह सुनकर निशा बहुत विनम्रतासे बोली कि मेरा भी कोई भाई नहीं है और यदि आज मैं आपको अपना भाई बनाना चाहूँ तो क्या आप इसे स्वीकार करेंगे? मुझे उस समय कोई जवाब नहीं सूझ रहा था, तभी उसने अचानक ही अपनी साड़ीके पल्लूको फाड़कर उसे मेरी कलाईपर बाँध दिया और बोली कि 'भइया! आजकी इस दुर्घटनामें आपके ऋणको मैं कभी नहीं चुका सकती।' मैंने उसे कहा कि मैं तुम्हें क्या उपहार दूँ? तो वह बोली मेरे सुहागको आपने बचा लिया, इससे बड़ा उपहार और क्या हो सकता है? मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे अनन्तसे मेरी बहनकी आवाज आ रही हो, मैं तो चली गयी, परंतु तुम्हारे लिये दूसरी बहनको भेज दिया है।

तीर्थ-दर्शन—

मोक्षदायिका कांचीपुरी

(ब्रह्मलीन कांचीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य वरिष्ठ स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

कांची भारतकी सात पुनीत नगरियोंमेंसे एक है और दक्षिण भारतके प्राचीन नगरोंमेंसे मुख्य है। ब्रह्माण्ड तथा स्कन्दपुराणमें इसका उल्लेख हुआ है—

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवन्तिका।
एताः पुण्यतमाः प्रोक्ताः पुरीणामुत्तमोत्तमाः॥

कांची-माहात्म्यके बारेमें ब्रह्माण्डपुराणमें कहा गया है—

रहस्यं सम्प्रवक्ष्यामि लोपामुद्रापते शृणु।
नेत्रद्वयं महेशस्य काशी कांची पुरीद्वयम्॥
विख्यातं वैष्णवं क्षेत्रं शिवसान्निध्यकारकम्।
कांचीक्षेत्रे पुरा धाता सर्वलोकपितामहः॥
श्रीदेवीदर्शनार्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम्।
प्रादुरासीत् पुरो लक्ष्मीः पद्महस्त पुरस्सरा॥
पद्मासने च तिष्ठन्ती विष्णुना जिष्णुना सह।
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता॥

ह्वेनसांगद्वारा उल्लिखित तथ्योंसे स्पष्ट होता है कि भगवान् बुद्ध कांचीपुरी आये थे और अशोकने यहाँ एक स्तूप बनवाया था। ह्वेनसांगके अनुसार कांची लगभग साढ़े पाँच मील विस्तारमें थी। उसके समयमें वहाँ आठ देव-मन्दिर थे और अनेक निर्ग्रन्थ लोग वहाँ वास करते थे। महाभाष्यमें 'कांची' पूरकका प्रयोग है। पल्लवोंके अनेक अभिलेख कांचीके प्राचीन इतिहासपर प्रकाश डालते हैं। समुद्रगुप्तकी प्रयाग-प्रशस्तिमें आया है कि समुद्रगुप्तने चौथी शताब्दीके प्रथम चरणमें कांचीके विष्णु गोपको पराजित किया था। मणिमेखलैमें कांचीका विशद वर्णन आया है। बार्हस्पत्यसूत्रमें आया है कि

कांची एक विख्यात शाक्त क्षेत्र है।

यह हरिहरात्मक पुरी है। यहाँ ५१ शक्तिपीठोंमेंसे एक पीठ है। यहाँ सतीका कंकाल गिरा था। कामाक्षी मन्दिर यहाँका शक्तिपीठ है। कांचीके एकाम्रेश्वर लिंगको भूतत्त्व-लिंग मानते हैं। लेकिन इसपर मतभेद है।

दक्षिण रेलवेके मद्रास-एगमोर रामेश्वरम् रेलमार्गपर मद्राससे ५६ कि०मी० दूरीपर चेंगलपट्ट स्टेशन है। यहाँसे एक रेल लाइन अरक्कोणम्‌तक जाती है। इस रेल लाइनपर चेंगलपट्टसे ३५ कि०मी०की दूरीपर कांचीपुरम् स्टेशन है, परंतु नगरका नाम कांचीवरम् है। इस नगरके एक ओर शिवकांची तथा दूसरी ओर विष्णुकांची है। नगरका अधिकांश भाग—बस स्टैण्ड, रेलवे स्टेशन एवं प्रमुख बाजार शिवकांचीमें है। विष्णुकांची साधारण छोटी-सी बस्ती है। यहाँ कई धर्मशालाएँ तथा आधुनिक होटल हैं। कांचीमें गर्मीके दिनोंमें कुएँ सूख जाते हैं। यहाँ पेयजलकी कमी रहती है। नगरसे ४ कि०मी० पर पालार नदी है।

शिवकांची

स्टेशनसे लगभग २ कि०मी० पर सर्वतीर्थ नामक सरोवर है। शिवकांचीमें स्नानके लिये यह मुख्य तीर्थ है। मध्य सरोवरमें एक छोटा-सा मन्दिर है। उसमें काशी विश्वनाथका भव्य मन्दिर है। शिवलिंग बाबा विश्वनाथके स्वरूप हैं। सरोवरका तट मुण्डन और श्राद्ध-कर्मके लिये प्रसिद्ध है।

शिवकांचीमें एकाम्रेश्वर शिवजीका मुख्य मन्दिर है। सरोवरसे यह अत्यन्त नजदीक है। मन्दिरकी विशालता देखते ही बनती है। दक्षिण द्वारके गोपुरके सामने एक मण्डप है, जिसके खम्भोंपर अनेक सुन्दर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मन्दिरमें दो बड़े-बड़े घेरे हैं। पहले घेरेमें दो कक्षाएँ हैं। एक कक्षामें प्रधान गोपुर, जो लगभग १० मंजिला ऊँचा है। द्वारके दोनों ओर सुब्रह्मण्यम् तथा गणेशजीके मन्दिर हैं। दूसरी कक्षामें शिव गंगा सरोवर है। ज्येष्ठके महीनेमें उत्सव मूर्तियोंका यहाँ जल-विहार होता है। उस समय वहाँ बड़ा मेला लगता है। सरोवरके दक्षिण एक मण्डपमें श्मशानेश्वर शिवलिंग है। मुख्य मन्दिरके तीन द्वारोंके भीतर श्रीएकाम्रेश्वर शिवलिंग स्थित है। श्यामवर्णकी यह लिंग-मूर्ति बालुकासे निर्मित है। मूर्तिके पीछे गौरी-गणेशकी युगल मूर्ति है। यहाँ एकाम्रेश्वर शिवपर जल नहीं चढ़ाया जाता। चमेलीके शुद्ध तेलसे इनका अभिषेक होता है। सोमवारको सवारी निकलती है।

मन्दिरकी दो परिक्रमाएँ की जाती हैं। पहलेमें शिव भक्तगण, गणेशजी, १०८ शिवलिंग, नन्देश्वर लिंग, चण्डिकेश्वर लिंग, चण्ड-कण्ठ और बालाजीकी मूर्तियाँ हैं। दूसरी परिक्रमामें कालिका देवी, कोटिलिंग तथा कैलास मन्दिर है। कैलास मन्दिरमें शिव-पार्वतीकी स्वर्णिम मूर्ति है। जगमोहनमें ६४ योगिनियोंकी मूर्तियाँ हैं। एक अलग मन्दिरमें पार्वतीजीकी मूर्ति है। एक मन्दिरमें स्वर्ण कामाक्षीदेवी हैं।

एकाम्रेश्वर मन्दिरके प्रांगणमें एक अत्यन्त पुराना जीर्ण-शीर्ण आमका वृक्ष है। यात्री उसकी परिक्रमा करते हैं। वृक्षके नीचे तपस्यारत कामाक्षी पार्वतीजीकी मूर्ति है। पौराणिक कथाके अनुसार पार्वतीने महान् अन्धकार उत्पन्न करके त्रिलोकीको त्रस्त कर दिया, भगवान् शंकरने शाप दिया, तब पार्वतीजी इसी आमके वृक्षके नीचे तपस्या करके शापसे मुक्त हुईं।

एकाम्रेश्वर लिंग पार्वतीद्वारा निर्मित बालुका मूर्ति है, जिसकी वे पूजा करती थीं।

कामाक्षीदेवी

एकाम्रेश्वर मन्दिरसे कुछ दूरीपर यह मन्दिर विद्यमान है। यह दक्षिण भारतका सर्वप्रधान सिद्धपीठ है। कामाक्षीदेवी आद्या शक्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी ही प्रतिमूर्ति हैं, इन्हें कामकोटि भी कहते हैं। यह मन्दिर अत्यन्त विशाल है। मन्दिरमें कामाक्षीदेवीकी सुन्दर प्रतिमा है, वहींपर अन्नपूर्णा और शारदाकी मूर्तियाँ हैं। वहाँ आदि शंकराचार्यकी भी मूर्ति है। मुख्य द्वारपर कामकोटि यंत्रमें आद्यालक्ष्मी, विद्यालक्ष्मी, सन्तानलक्ष्मी, सौभाग्यलक्ष्मी, धन और धान्यलक्ष्मी, वीर्यलक्ष्मी तथा विजयलक्ष्मीका न्यास है।

बताया जाता है कि यह मन्दिर आदि शंकराचार्यद्वारा

निर्मित है। मन्दिरकी दीवारोंपर अनेक मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जिनकी संख्या डेढ़ सौके आस-पास है। शिवकांचीमें समस्त शैव और वैष्णव मन्दिर इसी ढंगके निर्मित हैं। सभी मन्दिरोंका मुख कामकोटिकी ही ओर है। जब भी देवी-मूर्तियोंकी यात्राएँ की जाती हैं, पीठकी प्रदक्षिणा की जाती है।

कामाक्षी देवीके दक्षिण-पूर्वमें भगवान् वामनका मन्दिर है। इसमें वामन भगवान्‌की विशाल मूर्ति है। मूर्तिकी ऊँचाई लगभग पन्द्रह फीट है। भगवान्‌का एक चरण ऊपरके लोकोंको नापनेके लिये उठा हुआ है। चरणके नीचे राजा बलिका मस्तक है। इस मूर्तिके दर्शन एक लम्बे बाँसमें मशाल जलाकर पुजारी कराता है। मशालके बिना भगवान्‌के मुखका दर्शन नहीं हो पाता है। वामन मन्दिरके ठीक सामने सुब्रह्मण्यम् स्वामीका मन्दिर है। इसमें स्वामी कार्तिककी भव्य मूर्ति है। मन्दिरकी बहुत प्रतिष्ठा है। शिवकांचीमें लगभग १०८ शिव मन्दिर हैं।

विष्णुकांची

शिवकांचीसे ३ कि०मी० की दूरीपर विष्णुकांची है। यहाँ १८ विष्णु मन्दिर हैं। मुख्य मन्दिर वरदराज स्वामीका है। यह मन्दिर भी बहुत विशाल है। मन्दिर तीन घेरेमें है। पूर्वका गोपुर ११ मंजिल ऊँचा है। दक्षिण भारतका सबसे बड़ा उत्सव ब्रह्मोत्सव यहीं होता है। पश्चिमके गोपुरसे प्रवेश करनेपर सप्त स्तम्भ मण्डप मिलता है। इसकी निर्माण कला अत्यन्त आश्चर्यजनक है। मण्डपके मध्यमें एक सिंहासन है। उत्सवके समय भगवान्‌की सवारी यहाँ लगायी जाती है। मण्डपके पास कोटि कीर्ति सरोवर है। सरोवरमें स्नानकर यात्री दर्शन करते हैं। पश्चिम गोपुरके भीतर स्वर्णमण्डित गरुड़-स्तम्भ है। दक्षिणके एक मन्दिरमें रामानुजाचार्यकी मूर्ति है। रामानुजाचार्यके ८ पीठोंमेंसे एक पीठ यहाँ है। गरुड़-स्तम्भके पूर्वमें लक्ष्मीजीका मन्दिर है। इन्हें पेरूम देवी कहते हैं। पश्चिममें भगवान्‌के विविध वाहन हैं। इनमें हनुमान्, हाथी, घोड़ा, गरुड़, मयूर, बाघ, सिंह आदिके सोने और चाँदीके रथ हैं।

तीसरे घेरेमें वरदराजका मन्दिर है। मन्दिर एक ऊँचे चबूतरेपर स्थित है। यह हस्तगिरि है और इसे ऐरावतकी संज्ञा दी जाती है। सामने सिंहासनपर नृसिंह भगवान्‌की मूर्ति है। हस्तगिरिपर चढ़नेके लिये २४ सीढ़ियाँ हैं, इन्हें गायत्रीके अक्षरोंका प्रतीक माना जाता है। भगवान्‌के मुख्य मन्दिरको विमान कहते हैं। ६ फीट ऊँची श्रीवरदराजकी काली चतुर्भुज मूर्ति विद्यमान है। भगवान्‌के गलेमें शालग्रामकी एक माला है। वरदराजका दर्शन करके यात्री जब नीचे उतरते हैं, तो रास्तेमें अनेक मूर्तियाँ दिखलायी पड़ती हैं।

विष्णुकांचीमें वल्लभाचार्य महाप्रभुकी बैठक है। यहींपर शेषशायी भगवान् विष्णुकी सरोवरके जलमें डूबी मूर्ति है। २० वर्षोंमें यह मूर्ति एक बार जलसे बाहर आती है। उस समय बहुत बड़ा उत्सव होता है। विष्णुकांचीमें शंकराचार्यका काम-कोटि पीठ है। यहाँ भगवान् शंकराचार्य स्वयं आये थे और पीठकी स्थापना करके कैलासको चले गये। विष्णुकांचीसे एक कि०मी० पर शिवस्थान है, जिसे आजकल तेननपाक्कम् कहते हैं।

कांचीके बारेमें वामनपुराणमें लिखा है कि पुष्पोंमें जाती, नगरोंमें कांची, नारियोंमें रम्भा, चार आश्रमोंके व्यक्तियोंमें गृहस्थ, पुरोंमें कुशस्थली एवं देशमें मध्यदेश सर्वश्रेष्ठ हैं। पल्लवोंकी यह सर्वप्रिय नगरी रही है। उनके युगमें कांचीका वैभव अपने स्वर्णिम शिखरपर था। जैनियोंने इसे अपना तीर्थ-स्थल बनाया था। इसलिये यहाँ एक प्राचीन जैन मन्दिर भी है। कांची दक्षिण भारतमें कलाविदोंके लिये रहस्यपूर्ण नगर है। यहाँके मन्दिरोंकी कलासे भारतकी ऐश्वर्यमयी प्रतिभा झलकती है। कांचीका इतिहास पल्लवोंका इतिहास रहा है। पल्लव नरेशोंने कांचीको समृद्धशाली बनानेके लिये अपना सर्वस्व त्याग दिया था।

यहाँ अनेक युद्ध भी हुए। लेकिन युद्धोंसे यहाँकी सांस्कृतिक परम्पराको बहुत अधिक क्षति नहीं पहुँची।

संत-चरित—

भक्त मंगलदास

(पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम०ए०)

आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किं
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किं
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥

चारों वेद जिसकी कीर्ति बखानते हैं, योगियोंके ध्यानमें जो क्षणभरके लिये भी नहीं आता, वह ग्वालिनोंके हाथ बिक जाता है। भावुक ग्वालिनें उसे अपने प्रेम-पाशमें बाँध लेती हैं। इन गवाँरिनोंके पास वह गिड़गिड़ाता हुआ आता है और सयाने कहते हैं कि वह मिलता ही नहीं। इन ग्वालिनोंका कैसा महान् पुण्य था! इन्हें जो सुख मिला, वह दूसरोंके लिये, ब्रह्मादिके लिये भी दुर्लभ है। इन भोली-भाली अहीरिनोंके सुकृतका हिसाब कौन लगा सकता है, जिन्होंने मुरारिको खेलाया—अन्तःसुखसे खेलाया और बाह्यसुखसे भी। भगवान्ने उन्हें अन्तःसुख दिया। श्रीकृष्णको जिन्होंने अपना सब कुछ अर्पण कर दिया, जो घर-द्वार और पति-पुत्रतकको भूल गयीं, जिनके लिये धन, मान और स्वजन विष-से हो गये, वे एकान्तमें 'उसे' पाकर निहाल हो गयीं। अन्दर हरि, बाहर हरि, हरिने ही उन्हें अपने अन्दर बन्द कर रखा था।

नासिकके पास पंचवटी नामका एक पुण्य क्षेत्र है। आजसे लगभग दो सौ वर्ष पूर्व वहीं एक साधारण-से गाँवमें एक अहीरके घर मंगलका जन्म हुआ। मंगलके माता-पिता बहुत ही साधारण स्थितिके किसान थे। घरमें दो बैल थे और चार-पाँच गायें। पिता किसानी करते, माता गायोंकी देख-भाल करती, दूध जमाती, दही बिलोती, मक्खन निकालती, घी बनाती और फिर गाँव-जवारमें बेचती। मंगल इसी अहीर दम्पतीका एकमात्र लाड़ला लाल था। मंगलके काले-काले गभुआरे कुंचित केश, बड़ी-बड़ी आँखें, सुन्दर सलोना मुख, प्यारभरी चितवन किसके जीको नहीं चुरा लेती? जो भी देखता उसपर लट्टू हो जाता। जो भी उधरसे निकलता एक बार मंगलको भर आँख देखे बिना आगे नहीं बढ़ता। मंगल गाँवभरकी स्त्रियोंका प्यारा खिलौना बन गया। वे कई तरहके बहाने लेकर मंगलके घर आतीं—कोई आग लेनेके बहाने आती, कोई दीपक जलानेके बहाने, कोई दहीके लिये जामनके बहाने आती, कोई किसी भूली हुई बातको याद दिलानेके बहाने। मंगलको देखकर किसीका जी भरता ही नहीं था, सभी चाहतीं मंगल मेरी ही आँखोंकी पुतली बना रहे।

हजारों वर्ष पूर्व हमने कन्हैयाको अपनी गोदमें रखकर खेलाया है। वह सुख हमारे प्राणोंमें समाया हुआ है और जन्म-जन्मके संस्कारको लेकर हम जहाँ भी जाते हैं, जहाँ भी रहते हैं, वहीं उस कान्हाको देखनेके लिये हमारे प्राण छटपटाते हैं, हृदय तड़पता है, जी कैसा-कैसा करता है। यही कारण है कि कहीं कोई सुन्दर बालक दीख गया तो हमें अपने 'प्यारे' की सुध आ जाती है और हम क्षणभरके लिये ही सही, किसी और लोकमें किन्हीं और स्मृतियोंमें जा पड़ते हैं। बालक मंगलको देखकर गाँवकी ग्वालिनोंकी वे ही पूर्व स्मृतियाँ उमड़ आतीं—वही नन्दरानी, वही नन्दलाल आँखोंमें झूल उठते!

माँ दही मथ रही है, मंगल उसकी पीठपर जा चढ़ा है और अपनी नन्हीं-नन्हीं भुजाओंसे बाँधकर माँकी गर्दनसे लिपटा हुआ है। इस सुखको कोई मातृहृदय ही अनुभव कर सकता है! मंगल था भी पूरा नटखट और शरारती। माँकी आँखें बचाकर दहीके ऊपरी हिस्सेको चट कर जाना या जमा किये हुए नैनूको यार-दोस्तोंमें बाँट देना उसे बहुत भाता था। माँ उसकी इन सारी हरकतोंको बहुत लाड़-प्यारसे देखती और उसके लल्लाका जी न दुःख जाय, इसलिये वह उसे कभी एक बात भी नहीं कहती।

जन्माष्टमीकी रात थी। मंगलके घर महान् उत्सव था। गाँव-जवारके स्त्री-पुरुष जुटे हुए थे। हिंडोला लगा हुआ था। उसपर श्यामसुन्दरकी मनोहर मूर्ति पधरायी गयी थी। माँ रेशमकी डोरी धीरे-धीरे खींच रही थी और गा रही थी—

मेरी अँखियनके भूषन गिरधारी।
बलि बलि जाउँ छबीली छबि पर अति आनँद सुखकारी॥
परम उदार चतुर चिंतामणि दरस परस दुखहारी।
अतुल प्रताप तनक तुलसीदल मानत सेवा भारी॥
छीतस्वामी गिरिधरन बिसद जस गावत गोकुल नारी।
कहा बरनौं गुननाथ नाथ के श्रीविट्ठल हृदय बिहारी॥

माँ गा रही है, मंगल एकटक उस मंगलमयी मूर्तिको निहार रहा है। वह कुछ समझ नहीं रहा है कि यह सब क्या हो रहा है। परंतु उसके मन-प्राणमें एक दिव्य उल्लास नृत्य कर रहा है। वह यह सब एक कुतूहल और आनन्दकी दृष्टिसे देख रहा है और नाच रहा है। आधी रात हुई। देवकीका दुलारा जीव-जीवके हृदयमें उतरा। सर्वत्र आनन्द छा रहा है। मंगलके आनन्दकी कोई सीमा नहीं है। वह बार-बार माँसे पूछता है—माँ! यह सब क्या है, किसलिये है? माँ बच्चेको चूम लेती है और अश्रुगद्‌गद स्वरसे कहती है—लल्ला, आज हमारे घर त्रिभुवनसुन्दर श्रीगोपालकृष्ण आये हैं। 'वे कैसे हैं माँ?' 'कैसे हैं, मैं क्या कहूँ? बड़े ही सुन्दर, बड़े ही मधुर, बड़े ही प्यारे! तुम एक बार उन्हें देख लोगे तो फिर छोड़ नहीं सकते, रात-दिन उन्हींके साथ लगे रहोगे, खाना-पीना सब कुछ भूल जाओगे, मुझे भी भूल जाओगे।' मंगलके लिये आजकी रात अत्यन्त रहस्यमय सिद्ध हुई। रातभर वह सोचता रहा—वे कैसे हैं जिन्हें एक बार देख लेनेपर फिर कभी छोड़ा नहीं जाता, वे कैसे हैं जिन्हें पाकर सब कुछ भूल जाता है?

दूसरे दिन मंगल अपनी गायें लेकर जब चरानेके लिये बाहर गया तो रातवाली बात उसके मनमें चक्कर लगा रही थी। बार-बार यही विचार उसके मनमें उठ रहा था—वह कौन-सा साथी है, जिसे पाकर प्राणोंकी भूख-प्यास सदाके लिये शान्त हो जाती है? मंगलका हृदय आज अपने प्राणसखासे मिलनेके लिये ललक रहा था। गायोंको उसने चरनेके लिये छोड़ दिया। कुछ देरतक बछड़ोंके साथ खेलता रहा। कारी, कजरारी, धौरी, धूमरी, गोली सभी गायें दूर जा पड़ीं, बछड़े भी उनके पीछे-पीछे बहुत दूर जा पड़े। मंगल आज सजल श्यामल मेघमालाको देखता और उसका हृदय तरंगित हो उठता, दूरतक फैले हुए हरे-भरे खेत देखता और उसका हृदय भर आता, आकाशमें उड़ते हुए सारसोंकी पंक्ति देखता और चाहता मैं भी उड़ चलूँ। उफनती हुई, इठलाती हुई नदियाँ देखता और चाहता मैं भी इनकी धारामें एक होकर 'कहीं' चला जाता। आज उसके लिये जगत्‌के कण-कणमें एक विशेष संकेत—एक खास इशारा था, जिसे वह समझकर भी नहीं समझ रहा था और न समझते हुए भी समझ रहा था।

भगवान्‌के पथमें चलनेके लिये विशेष समझदारीकी जरूरत नहीं पड़ती, शास्त्रोंके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं होती। ज्ञान-विज्ञानके गम्भीर रहस्योंकी छानबीनकी पुंखानुपुंख अनुसन्धानकी आवश्यकता नहीं होती और न तत्त्वोंके विश्लेषणकी ही आवश्यकता है। आवश्यकता है एकमात्र हृदय-दानकी। प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें एक-न-एक दिन ऐसा आता ही है, जब वह भगवान्‌के संकेतको, प्रभुके इशारेको स्पष्ट सुनता है। यह इशारा प्रत्येक प्राणीके लिये—जीवमात्रके लिये होता है। किंतु अधिकांश तो इसे सुनकर अनसुना कर देते हैं और जगत्‌के विषय-विलासोंमें ही रचे-पचे रह जाते हैं। कुछ ही ऐसे महाभाग होते हैं, जो उस इशारेपर अपने जीवनकी बलि देकर अपने-आपको, अपने लोक-परलोकको प्रभुके चरणोंमें निछावर कर देते हैं। ऐसोंका जीवन हरिमय हो जाता है। उनका सब कर्म श्रीकृष्णार्पण होता है। उनका खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना, हँसना-खेलना—सब कुछ भगवत्प्रीतिके लिये होता है।

और भगवान्‌का रहस्य, उनका प्रेम, उनकी लीला जाननेसे थोड़े ही जानी जाती है? यह सब कुछ और इससे भी अधिक गोपनीय रहस्यकी बातें भगवान् अपने भक्तोंको स्वयं जना देते हैं और सच्चा जानना तो वस्तुतः तभी होता है, जब स्वयं श्रीभगवान् हमारे हृदयदेशमें अवतरित होकर हमें जनाते हैं—अपनी एक-एक बात कहते हैं। उनकी एक मृदुल मुसकान, एक मधुर हास्यमें हमारे सारे प्रश्न, सारी पहेली, समस्त शंकाएँ बह जाती हैं। जीवनकी गति गंगाके प्रवाहकी तरह अविच्छिन्नरूपसे श्रीकृष्णचरणोंकी ओर प्रवाहित हो जाती है, समस्त जगत् आनन्दके महासमुद्रमें डूब जाता है। श्रीकृष्णप्रेमके

अतिरिक्त कोई वस्तु रह नहीं जाती। भगवान् भक्तको आलिंगनका सुख देकर प्रीतिसे उसके अंग-प्रत्यंगको नहला देते हैं, अमृतभरी दृष्टि डालकर उसके हृदयको शीतल कर देते हैं। उसे बरबस गोदमें उठा लेते हैं और पीताम्बरसे उसके आँसू पोछते हैं। प्रेमभरी दृष्टिसे देखते हुए उसे सान्त्वना देते हैं। ऐसी ही उनकी लीला है। अनेक भक्तोंका जीवन इसका साक्षी है। आज भी यह अनुभव दुर्लभ नहीं।

कितनी गजबकी है उनकी प्रीति? हम एक बार उनकी ओर देखते हैं तो वे लाख-लाख बार हमारी ओर दौड़ते हैं और हमारे प्रेमके ग्राहक बन जाते हैं। एक बार भी जो उनकी पकड़में आ गया, वह सदाके लिये उनका बन जाता है; जिसे वे एक बार छू देते हैं, उसे सदाके लिये ही अपना लेते हैं। प्रेमके लिये वह प्रेमी प्रभु दर-दर ठोकरें खा रहा है। घर-घर, एक-एक व्यक्तिसे वह प्रेमकी भीख माँग रहा है। हम दुतकारते हैं, फिर भी वह विकट प्रेमी हमारी उपेक्षा-भर्त्सनाका ध्यान न कर बार-बार जाता है और कहता है—'हे जीव! प्रेमकी एक बूँद देकर मुझे सदाके लिये खरीद लो। मैं तुम्हारा गुलाम बन जाऊँगा।'

परंतु हाय रे मनुष्यका अभाग्य! इस अनोखे अतिथिकी प्रणय-भिक्षाकी ओर हमारी दृष्टि कभी जाती ही नहीं। हम डरते हैं कि एक बार उधर दृष्टि गयी नहीं कि हम बिके नहीं। मंगलकी दृष्टि, एक बार ही सही, उधर गयी और 'वह' सदाके लिये मंगलका साथी बन गया। दिनमें उसीका जलवा, रातमें उसीके सपने। ऐसा मालूम होता कोई कंधेपर अपने कोमल हाथ रखकर कह रहा है, मेरी ओर देखो, मुझसे बात करो, कुछ बोलो। मंगल इस अदृश्य स्पर्शका अनुभव कर एक दिव्य आनन्दमें मूर्च्छित हो जाता। रातको वह सोता तो देखता कि कोई मेरे सिरहाने बैठा है, मेरे सिरको अपनी गोदमें रखकर मेरे ऊपर मन्द-मन्द मुसकानकी फुलझड़ियाँ बरसा रहा है—कभी हँसता है, कभी धीरे-धीरे गाता है। कभी अपनी प्यारभरी कोमल अँगुलियोंको मेरे बालोंमें उलझाकर लाड़ लड़ाता है, कभी आँखोंको चूमता और कपोलोंको सहलाता है। मंगल यह समझ नहीं पाता कि यह सब किसके करिश्मे हैं। परंतु वह यह जानता था कि मेरा एक साथी है, जो रात-दिन हमारे साथ रहता है।

मंगलको उस लीलामयकी लीलाओंके दर्शन होने लगे। रातभर वह आधा सोया, आधा जागा रहता। ऐसा मालूम होता कोई अपना अत्यन्त प्यारा प्राणोंको गुदगुदा रहा है। सबेरे जागता तो उस गुदगुदीकी अनुभूति बनी ही रहती। वह गायें खोलकर जब चरानेके लिये वनमें ले जाता तो ऐसा प्रतीत होता, मानो उसका साथी उसके साथ चल रहा है—कभी कुछ गाता है, कभी नाचता है, कभी प्रेममें रूठता है, कभी गले लगाकर मनकी बातें कहता है, कभी दीखता है, कभी छिपता है। पके हुए बिम्बफलके समान अपने लाल-लाल होठोंपर वेणुको लगाकर भिन्न-भिन्न स्वरोंमें वह जाने क्या-क्या गाया करता है और उसका गीत सुनकर त्रिलोकीके चर-अचर जीव मोहित हो जाते हैं। वह वेणुको बजाते हुए मदमत्त हाथीकी तरह कयामतकी चाल चलता हुआ जब विलासपूर्ण दृष्टि-निक्षेप करता है, तो समस्त वसुन्धरा उस मधुमें डूब जाती है।

मंगलको अब गायें चरानेमें एक अद्भुत आनन्द मिलता। वनमें उसे भगवान्की विविध लीलाओंके दर्शन होते। अब अपनी गायों और बछड़ोंसे उसकी अत्यन्त आत्मीयता हो गयी। वनमें वह देखता कि किसी नन्हे-से बछड़ेको गोदमें उठाकर श्रीकृष्ण चूम रहे हैं। कभी देखता कि किसी गायकी पीठपर बायाँ हाथ टेककर दाहिने हाथसे वंशीको अधरपर रखकर धीरे-धीरे कुछ गा रहे हैं। गायें कान खड़े करके, निर्निमेष दृष्टिसे उनकी ओर देख रही हैं और मुग्ध होकर वंशी-ध्वनि सुन रही हैं। जब वंशी बजती तो झुंड-के-झुंड बैल, गाय और वनके हिरण अपनी सुध-बुध खोकर मुँहके ग्रासको बिना चबाये ही मुँहमें वैसे ही रखकर, कान खड़े करके, नेत्र मूँदकर, सोते हुए-से और चित्र लिखे-से निश्चल हो जाते हैं। वनमालाकी दिव्य गन्धसे समस्त वसुन्धरा भर गयी है, जड़ चेतन हो गये हैं, चेतन जड़। ये सारी लीलाएँ मंगल प्रत्यक्ष देखता और मुग्ध होकर देखता!

एक दिनकी बात है। सन्ध्या हो रही थी। सूर्यदेव अस्ताचलको जा रहे थे। सायंकाल होते देख मंगल अपनी गायें लेकर घरको लौट रहा था। देखता क्या है कि उसका

प्राण-सखा उसके साथ ही लौट रहा है। उसके नेत्र मदसे विह्वल हो रहे हैं। गौओंके खुरसे उड़ी हुई धूल उसके मुखमण्डलपर तथा बालोंपर जम गयी है, इस कारण उसका मुख पके हुए बेरके समान पाण्डुवर्ण दीख रहा है, वनके पुष्पों तथा कोमल-कोमल किसलयोंकी माला पहन रखी है, गजराजके समान झूमता हुआ चल रहा है, सुवर्णके कुण्डलोंकी कान्तिसे उसके सुकुमार कपोलोंपर एक अद्भुत छटा छा रही है। आज मंगलसे रहा न गया। उसने चाहा कि इस अपरूप रूपको पी जाऊँ। इसलिये वह आगे बढ़ा और उस त्रिभुवनमोहनको आलिंगन-पाशमें बाँध लेना चाहा। परंतु······ !!

कैसे-कैसे खेल हैं उस खिलाड़ीके! उसकी ओर न झुको तो बार-बार दरवाजा खटखटाता है, रात-दिन परेशान किये रहता है, न खाने देता है न सोने। लेकिन जब उसकी ओर प्राणोंकी हाहाकार लेकर मुड़ो तो वह छलिया जाने कहाँ छिप जाता है और ऐसा छिपता है कि बेनिशाँ हो जाता है, लापता हो जाता है। मिलना, मिल-मिलकर बिछुड़ना और फिर बिछुड़-बिछुड़कर, एक क्षणकी झलक दिखाकर फिर छिप जाना, यह लुका-छिपी उसकी सर्वथा निराली होती है। क्षणभरमें प्रकट होगा, क्षणभरमें छिप जायगा। हृदय खोलकर मिलेगा और क्षण ही भरमें खिसक जायगा। न उसे पकड़ते बनता है न छोड़ते। जनम-जनमसे हम उस रूपको निहारते आये हैं; फिर भी जी नहीं भरा, हृदय नहीं अघाया।

मिलन और विरहके बीच साधनाका सोता झोंके खाता हुआ चलता रहा। मिलनकी लीला हो चुकी थी, अब विरहकी लीला होनेवाली थी। यह विरह भी तो मिलनसे कम मधुर नहीं है। प्यारेका सब कुछ प्यारा है। उसका मिलना भी प्रिय है और बिछुड़ना भी प्रिय है, मिलना अधिक प्रिय है या बिछुड़ना, इसे कौन बतलाये? जिस प्रकार वर्षा-ऋतुके आनेपर जल बरसता है, बिजली चमकती है, मेघ गर्जना करते हैं, हवा जोरसे चलने लगती है, फूल खिल जाते हैं और पक्षी आनन्दमें डूबकर कूजने लगते हैं, उसी प्रकार प्रियतम प्रभुके दर्शन हो जानेपर आनन्दित होकर नेत्र जलवर्षा करने लगते हैं, ओंठ मृदु हास्य करने लगते हैं, हृदयकी कली खिल उठती है, आनन्दके झोंकेसे मस्तक हिलने लगता है, प्रतिक्षण उस प्रिय सखाके नामकी गर्जना होने लगती है और प्रेमकी मस्ती प्रभुके गुणगानमें सराबोर कर देती है। मिलन और विरह दोनों ही साधन हरि-मिलनके ही हैं। यह मिलन चिर गोपनीय है। इस आनन्दका पता न कर्मीको है न निष्कर्मीको, न ज्ञानीको है न ध्यानीको। वेद भी इसका पार नहीं पा सकते, विधिकी यहाँतक पहुँच नहीं। यह तो केवल रसिक हृदयोंके निकट ही चिर समुज्ज्वल है। यही है साधनाका शेष, यही है प्रेमकी चरम लीला। यही है योगियोंकी योगसाधना, यही है भक्तोंको भक्तिकी प्राप्ति, यही है प्रेमीजनोंका पूर्ण प्रणय-महोत्सव!

मंगलकी दशा अब कुछ विचित्र रहने लगी। मिलकर बिछुड़नेका दु:ख कोई भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है। मंगलसे अब न रोते बनता, न हँसते। आनन्द था मिलनकी स्मृतिका, विषाद था पाकर खो देनेका । उसके जीमें कुछ ऐसी लहरें उठ रही थीं कि उस प्यारेके बिना अब जीना बेकार है। किसी काममें उसका जी नहीं लगता। न भूख लगती, न नींद आती। रात-दिन रोता रहता, रोते-रोते कभी-कभी बीचमें अट्टहास कर बैठता। अजीब पागलकी-सी दशा थी। लोग कुछ समझ नहीं रहे थे कि क्या बात है। पिताने समझा लड़केका दिमाग फिर गया है, दवा करानी चाहिये। आस-पासके वैद्य-हकीमोंको बुलवाया। लेकिन मर्ज तो लाइलाज था।

'मीराकी प्रभु पीर मिटे जब बैद साँवलियो होय।'

मंगल अपने 'वैद्य' की खोजमें आप ही निकल पड़ा। प्रेमियोंका हाल ऐसा ही होता है। प्रेमके अनियारे बाणसे जिसका हृदय बिंध जाता है, उसकी दशा उन्मत्तकी-सी हो जाती है। जगत्‌की कोई चर्चा उसे नहीं सुहाती। चेष्टा करनेपर भी वह कुछ बोल नहीं सकता। उसका शरीर पुलकित हो उठता है। उसके रोम-रोमसे प्रेमकी किरण-धाराएँ निकलकर निर्मल प्रेमज्योति फैला देती हैं। समस्त वातावरण प्रेममय हो जाता है। वह प्रेमावेशमें बार-बार रोता है, कभी हँसता है, कभी लाज छोड़कर ऊँचे स्वरमें गाने और नाचने लगता है। मंगलकी माँ मंगलके इस दिव्य उन्मादको कुछ-कुछ समझ रही थी। उसने देखा था कि जन्माष्टमीकी रातसे ही मंगलकी दशा पलटने लगी थी।

उसे मंगलकी इस दशापर परम सन्तोष था। वह जानती थी कि वास्तविक पुत्रवती वही है, जिसका पुत्र श्रीहरिके चरणोंमें अनुरक्त हो। वह अपने भाग्यको सराहती और प्रभुके चरणोंमें मस्तक टेककर नित्य यही प्रार्थना करती कि 'हे प्रभो! इस बालकके हृदयमें प्रेमकी आग लहकाकर आप अब इसे यों न छोड़ो, अब तो इसे सर्वस्व अपना लो। मैं इसे तुम्हारे चरणोंमें आनन्दके साथ निवेदित करती हूँ। तुम इसे अब स्वीकार कर लो।'

परंतु भगवान्ने तो पहलेहीसे उसे स्वीकार कर लिया था। वह शिकारी ऐसा-वैसा नहीं है। उसका निशाना खाली जाय, यह हो नहीं सकता। जिसपर उसने प्रेमबुझे तीर फेंके, वही लुट गया। घायलकी गति घायल ही जानता है, या जानता है वह शिकारी। छिप-छिपकर वार करता है; कभी बहुत हलकी मामूली चोट करता है, कभी गहरी—प्राण ले लेनेवाली चोट। बाण लगा हुआ हरिन जैसे छटपटाता है, वही हालत भगवत्प्रेमियोंकी होती है। वह हृदयको सीधे बेधता है और बाणको यों ही लगा छोड़ देता है। प्रेमकी गलीमें साधक जाता तो है जी बहलानेके लिये, आँखें जुड़ानेके लिये; लेकिन वहाँ जानेपर उसे लेने-के-देने पड़ जाते हैं। गरम ईख चूसनेकी-सी दशा हो जाती है—न चूसते बनता है न छोड़ते। घायल होकर घूमता-फिरता है। उसका दर्द कुछ निराला ही होता है। वहाँ दवा और दुआ कुछ भी काम नहीं देती।

गोदावरीके तटपर जंगलमें एक छोटा-सा मन्दिर है। उसमें श्रीराधाकृष्णकी युगल-मूर्ति विराजमान है। आसपास तुलसीका सघन वन है—दूरतक फैला हुआ जंगल। जंगली वृक्षों और पुष्पलताओंसे स्थानकी शोभा अत्यन्त रमणीय हो रही है। मोरों और वन्य पशुओंने वनको मुखरित कर दिया है। शान्त, स्तब्ध गोदावरीकी धारापर वनके फूल बहते हुए ऐसे लगते हैं, मानो वनदेवीने भगवान् सूर्यनारायणको पुष्पोंकी अंजलि समर्पित की है। बालरविकी कोमल किरणें समस्त वनप्रान्तमें और गोदावरीके हृदय-स्थलपर केलि कर रही हैं। मंगल गोदावरी-तटपर तुलसीके वनमें बैठा हुआ गद्‌गद कण्ठसे अपने प्राणनाथको कातर-भावसे पुकार रहा है। प्रार्थना करते-करते वह मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ता है। मूर्च्छित अवस्थामें मंगलको एक दिव्य वपुधारी महात्मासे '**ॐ राधायै स्वाहा**' का षडक्षर मन्त्र प्राप्त हुआ। मन्त्र कानोंमें प्रवेशकर हृदयमें पहुँचा और वहाँ हृदय-देशमें मन्त्रकी चेतनतासे एक विद्युल्लहर-सी लहराने लगी। मंगलको ऐसा प्रतीत हुआ कि शीतल विद्युत्के दिव्य अक्षरोंमें यह मन्त्र उसके हृदयमें वैसे ही प्रकट हुआ है, जैसे प्रशान्त नील आकाशमें पूर्णिमाका चन्द्रमा। मंगल जब होशमें आया तो वे महात्मा वहाँ नहीं थे, परंतु वह मन्त्र पहलेके समान ही चेतनरूपमें विद्युत्-धाराकी तरह हृदयमें तरंगित हो रहा था। मन्त्रकी यह दिव्य लीला देख मंगल मुग्ध था। उसके रोम-रोमसे मन्त्रराजकी कोमल किरणें प्रस्फुरित हो रही थीं और भीतर-बाहर समानरूपसे वह उस आनन्दसिन्धुमें डूब रहा था। आँखें खोलता तो सामने श्रीराधाकृष्णकी मंगल मूर्ति, आँखें बन्द करता तो हृदयमें उसी युगल-मूर्तिकी ललित लीला। प्राणोंमें, श्वासोंमें मन्त्रकी मधुर क्रीड़ा स्वयं होती रहती थी—अनायास, बिना प्रयास। वर्षों इसी रस-समाधिमें डूबा रहा। देह-गेहकी सुध-बुध न थी। वनके भीतरी भागमें रहनेवाले जो कुछ लाकर उसे खिला देते, वह खा लेता; जो कुछ पिला देते, वह पी लेता।

शारदी पूर्णिमाकी मध्यरात्रि है। मंगलके हृदयमें आज अपूर्व उल्लास छा रहा है। उसने वनके पुष्पोंकी माला बनायी, तुलसीकी मंजरीकी माला बनायी। प्राणनाथ और प्रियाजीको प्रेमके साथ पहनाया। आँसुओंसे उनके चरण पखारे और लगा उन्हें एकटक निहारने। देखते-देखते उसकी दृष्टि बँध गयी, पलकें स्थिर हो गयीं। फिर क्या देखता है कि श्रीराधारानीका हृदय खुलता है—ठीक जैसे सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे कमलकी कली खिलती है—राधारानी मंगलको उठाकर अपने हृदयमें छिपा लेती हैं और भगवान् खड़े-खड़े मन्द-मन्द मुसकानोंकी झड़ी लगा रहे हैं। यहाँ अब मंगल नहीं है—उसने अपना सर्वस्व अपने प्राणनाथ जीवन-सखाके चरणोंमें अर्पित कर दिया है और उसकी यह भेंट पूर्णतः स्वीकार कर ली गयी है।

मन्दिरके पास एक छोटा-सा चबूतरा बन गया है, जहाँ मंगल तुलसीवनमें बैठा करता था। लोग उसे मंगलदासका चबूतरा कहते हैं।

जगत्‌की रचनाका उद्देश्य

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

भगवान् जो जगत्‌की रचना करते हैं, उसमें भगवान्‌का जीवोंको नाना भाँतिसे रस प्रदान करना और स्वयं उनके प्रेम-रसका आस्वादन करना—यही उद्देश्य है। विचारशील साधकका चित्त शुद्ध होनेपर उसको बोध प्राप्त होता है और उसके बाद प्रेमकी प्राप्ति होती है। कोई कहे कि बोधके बाद प्रेमकी प्राप्ति कैसी? उसका तो शरीर-मन आदिसे कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता। फिर प्रेम कौन, किससे और कैसे करता है? इसका उत्तर यही है कि प्रेमीका मन, इन्द्रियाँ आदि कोई भी भौतिक नहीं रहते। उसके मन-बुद्धि आदि सभी दिव्य और चिन्मय होते हैं, क्योंकि भगवान् स्वयं जिस चिन्मय प्रेमकी धातुसे बने हैं, उसीसे उनका प्रेमी, उनका दिव्य धाम और सब कुछ बने हैं। उनमें कोई भी भौतिक वस्तु नहीं है। इसलिये बोधके बाद प्रेम होना असंगत नहीं है। इसीमें तो सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म लीलामय परमेश्वरके सगुण-साकार रूपकी सार्थकता है। प्रेमके अतिरिक्त सगुण-ब्रह्मके होनेमें कोई कारण ही नहीं है।

प्रेम अनन्त है, उसका कभी अन्त नहीं होता, क्योंकि प्रेमी और प्रेमकी लालसा एवं प्रियतम सभी नित्य और असीम हैं, अतः उनके मिलनमें और वियोगमें सदैव आकर्षण रहता है तथा नित्य नया प्रेम बना रहता है।

भगवान् जीवके नित्य साथी हैं। कभी उससे अलग नहीं होते, तथापि प्राणी उनको जानता नहीं, भूल गया है। जैसे किसीकी जेबमें घड़ी पड़ी हो और वह उसे भूल जाय तो अपने पास होते हुए भी वह उससे दूरीका अनुभव करता है। जबतक उसे यह मालूम नहीं होता कि घड़ी मेरे पास मेरी जेबमें ही है, तबतक वह उसे खोजता रहता है और उसके बिना दुखी होता है, परंतु जब उसको बोध हो जाता है, तब वह घड़ी उसे मिल जाती है। उसी प्रकार यह जीव जबसे भगवान्‌को भूल गया है, तबसे अपनेको उनसे अलग मानकर दुखी हो रहा है।

यह भूल मिटाकर जो अपने प्रेमास्पदके सम्बन्धका स्मरण हो जाना है, यही वास्तविक स्मरण है। अतः नाम-जप आदि साधन करते समय भी साधकको यह नहीं भूलना चाहिये कि 'यह नाम मेरे प्रियतमका है।'

चित्त-शुद्धिके लिये साधकको चाहिये कि या तो विकल्परहित विश्वास करके यह माने कि 'मेरी और प्रभुकी जातीय एकता है। अतः वे ही मेरे हैं। अन्य कोई मेरा नहीं है।' और यह मानकर एकमात्र प्रेमास्पद प्रभुके प्रेमकी लालसा प्रकट करे अथवा शरीर और संसारमें माना हुआ जो 'मैं और मेरापन' है, उसे विचारके द्वारा दूर करके सच्चिदानन्द-घन ब्रह्मसे अपने स्वरूपकी एकताका बोध प्राप्त करे।

'मेरा दुःख हरि बिन कौन हरे'

(श्रीजगदीशलालजी श्रीवास्तव 'दीश')

मेरा दुःख हरि बिन कौन हरे

जन्म-जन्म का मैं दुखियारा,
पग-पग पर छाया अँधियारा।
तन, मन जलता, पग-पग चलता,
अब मैं मौन धरे॥ मेरा दुःख....

जग में झूठ-कपट का धंधा,
मानव मन माया में अंधा।
धर्म-कर्म को त्याग निरन्तर,
जग में पाप करे॥ मेरा दुःख....

जो कुछ भी था, सभी गँवा कर,
दर-दर की मैं ठोकर खाकर।
तेरे दर पर आ बैठा हूँ,
नैनन नीर भरे॥ मेरा दुःख....

'दीश' अधम नर मैं चिरकामी,
तुम घट-घट के अन्तर्यामी।
जन्म-जन्म के पाप की गठरी,
खोलत जिया डरे॥ मेरा दुःख....

गो-चिन्तन—

गोसेवाके चमत्कार

(१)

गोसेवासे प्राप्त की—इच्छा-मृत्यु

भगवद्भक्ति एवं गोसेवा तथा राष्ट्रसेवाके लिये समर्पित व्यक्तिका हृदय, मन तथा मस्तिष्क इतना शक्तिशाली हो जाता है कि वह एक बार तो रोगों तथा मृत्युतकको चुनौती देनेकी दिव्य दैवी शक्ति प्राप्त कर लेता ही है। अपना जीवन प्रभुके चरणोंमें लीन कर देनेवाली धर्मसेवा एवं गोसेवा तथा राष्ट्र और समाजके लिये समर्पित विभूतिकी इच्छाशक्ति भीष्म पितामहकी तरह प्रबल हो जाती है तथा मृत्यु भी उसकी मुट्ठीमें समाहित हो जाती है। यहाँ ऐसी ही एक घटना प्रस्तुत है, जिसमें गोसेवासे इच्छा-मृत्युकी प्राप्तिको दर्शाया गया है—

दिल्लीके विख्यात समाजसेवी तथा सर्वोच्च न्यायालयके अधिवक्ता श्रीरामफलजीने एक दिन मुझे अपने पिता श्रीलाला रघुनाथसहायजीके ब्रह्मलोकगमनका अनूठा विवरण सुनाया। उसे सुनकर यह पता चलता है कि हमारे धर्मशास्त्रों एवं पुराणोंमें आयी इच्छा-मृत्युकी बातें अक्षरशः सत्य हैं—

गोसेवा—सात्त्विक जीवन—लाला रघुनाथ सहायजी झज्जर (हरियाणा)-के रहनेवाले थे। उन्होंने एक प्रकारसे ईश्वरमें दृढ़ विश्वास, सादगी, सात्त्विकता, संतोष तथा ईमानदारी—ये गुण उत्तराधिकारमें प्राप्त किये थे। गोमाताके वे परम भक्त थे। प्रतिदिन गायकी सेवा करते, गायका एक सेर दूध पीते। वे ९५ वर्षतक जिये तथा अन्तिम दिनतक १५ किलोमीटरकी सैर करते रहे।

लालाजी गौमाताकी सेवाको सर्वोपरि महत्त्व देते थे। अपने हाथसे गायकी सेवा करते थे। कसाइयोंको गाय ले जाते देखते तो उनसे भिड़नेको तत्पर रहते थे। कई बार तो कसाईको गायका मूल्य देकर गाय ले लेते थे।

एक दिन लालाजीने देखा कि एक कसाई गायको बूचड़खानेकी ओर ले जा रहा है। उन्होंने यह दृश्य देखा तो अपनी लाठी जमीनपर पटकी और जोरसे बोले—'अबे ओ जल्लाद, गायको छोड़ दे।' कसाईने कहा—'नहीं छोड़ूँगा।'

लालाजीने उसे चुनौती दी और लाठी हवामें घुमाते हुए बोले—'गाय या तो छोड़ दे नहीं तो एक ही लाठीके वारसे काम पूरा हो जायगा।' कसाईने कहा—'लाला, जेल जाओगे।' लालाजी बोले—'अरे कसाई, मैं तो कभी-न-कभी जेलसे वापस आ जाऊँगा, पर तू कब्रसे वापस नहीं आयेगा।' कसाईको गाय छोड़कर भागना पड़ा।

मित्रकी बेटीकी जिम्मेदारी—लालाजी दिल्लीमें रहते थे। झज्जरसे उन्हें किसीका सन्देश मिला कि आपके पुराने मित्र लाला रघुवीरसिंहके अन्तिम दिन हैं, वे आपसे मिलना चाहते हैं। लालाजी झज्जर जा पहुँचे। रघुवीरसिंह मृत्युशय्यापर पड़े थे। अपने अनन्य मित्रको देखते ही उनकी आँखोंमें चमक आ गयी।

उन्होंने रघुनाथसहायजीका हाथ जोरसे पकड़ लिया और बोले—'भाई रघुनाथ, मेरे प्राण अटके पड़े हैं, निकल नहीं रहे हैं। बस, एक चिन्ता है। विवाहके लिये एक बेटी रह गयी है। यदि तू उसके विवाहकी जिम्मेदारी ले ले तो मैं निश्चिन्त होकर अपने प्रभुके चरणोंमें लीन हो जाऊँ।' रघुनाथसहायजी भावुक हो गये। बोले—'रघुवीर, तू चिन्ता न कर। मैंने इतनी लड़कियोंकी शादियाँ करवायी हैं, फिर तेरी बेटी तो मेरी बेटीके बराबर है।'

लाला रघुवीरसिंहने आँखें उठायीं, रघुनाथसहायकी आँखोंमें झाँका, बोले—'पक्की बात?' रघुनाथसहाय बोले—'पक्की बात।' बस, इतना सुनकर लाला रघुवीरसिंहने, वहीं प्राण छोड़ दिये। बादमें उन्होंने उनकी बेटीका शानदार ढंगसे विवाह किया।

एक दिन लालाजीने अपने सबसे छोटे पुत्र रामफलको पास बुलाया। बोले—'बेटा, मैं ९५ सालका हो गया। अब अगले हफ्ते चला जाऊँगा।' रामफलजी परेशान। बोले—'पिताजी, आप पूर्ण स्वस्थ हैं। आज सुबह १५ किलोमीटरकी सैर करके आये हैं। पूजा की है। आपके शरीरके किसी अंगमें दर्द नहीं है। फिर यह क्या

बेकारकी बातें कर रहे हैं।'

लालाजी बोले—'हमने सोचा कि अब मेरी आयु ९५ सालकी हो गयी है। हमारे बेटे अब बूढ़े होने लगे हैं। तुममेंसे यदि कोई मेरे सामने चला जाय, तो मुझसे देखा नहीं जायगा। इसलिये अपने इष्टदेव गोपालको दरख्वास्त दे दी थी। आज वह दरख्वास्त मंजूर हो गयी है।'

गोपालने मेरी दरख्वास्त मंजूर की—रामफलजी उनका मुँह देखते रह गये। बोले—'पिताजी, यह बात तो समझमें आती है कि आपने दरख्वास्त दी। पर ऐसा कैसे हो सकता है कि वह मंजूर भी हो गयी और आपके पास मंजूरीकी खबर पहुँच गयी।'

लालाजी बोले—'मेरा ईश्वर गोपाल है। वह भी गायोंकी सेवा करता है, मैं भी गायोंको पालता हूँ। मैंने अपने कृष्णजीसे कहा—यदि मैंने सच्ची निष्ठासे गोमाताकी सेवा की है, कसाइयोंसे अनेक गायोंको बचाया है तो क्या तुम मेरी एक इच्छा पूरी नहीं कर सकते? क्या तुम मुझे मेरे कहनेसे मृत्यु नहीं दे सकते? बस, मुझे मेरे गोपालकी आवाज आ गयी। उसने मेरी दरख्वास्त मंजूर कर ली।'

१८ अगस्त सन् १९७५ का दिन था। दोपहरके १२ बजे थे। लालाजीने बेटे रामफलको पास बुलाया और बोले—'बेटा, मैं तो अब जा रहा हूँ। जिंदगीमें सुखी रहना है तो मेरी तीन बातें याद रखना।' रामफलजी हाथ जोड़कर सामने खड़े थे। लालाजी बोले—'वे तीन बातें हैं—लंगोटका पक्का रहना यानी अपने चरित्रको सँभालकर रखना, परस्त्रीपर कुदृष्टि भी नहीं पड़े—सावधान रहना। दूसरी बात गाँठका ईमानदार रहना—कभी भी बेईमानीका पैसा न कमाना। तीसरी बात गरीबनिवाज रहना। जिंदगीभर गरीबकी सेवा-सहायताको तत्पर रहना। गरीबकी हाय जिंदगी तहस-नहस कर देती है।'

बस, इतना कहकर लालाजीने आँखें मूँद लीं। रामफलजी तुरंत बगलसे डॉक्टर बुला लाये, पर पंछी तो उड़ चुका था।—**तरुण विजय**

(२)

गोसेवासे रोग-निवारण

घटना १९७५ ई० की है। अख्तियारपुर नामक गाँवमें एक दीनहीन बुढ़िया रहती थी। उसको एक ही बेटा था, जो अभी छोटा था। बुढ़िया गोसेवा करती तथा गौका दूध और मट्ठा बेचकर जीवन-यापन करती। जब बेटा कुछ सयाना हुआ और कमाने लगा, तब बुढ़ियाने उसका विवाह कर दिया। तत्पश्चात् उसे एक पोती हुई। कुछ समयके बाद उसके बेटेको टी०बी० हो गयी। बेटेकी बीमारीसे बेचारी बुढ़िया बहुत चिन्तित रहती। उसने अपने बेटेको अपने ही गाँवके डॉक्टरको दिखाया। डॉक्टरने देखा और दवा दी, जिससे कुछ सुधार हुआ, फिर भी डॉक्टरने परामर्श दिया—'गौका दूध खिलाओ-पिलाओ, अच्छी तरहसे गोसेवा करो।' बुढ़ियाने ऐसा ही किया। उसका बेटा भी गोदुग्ध-सेवनके साथ ही गौमाताकी तन्मयतासे सेवा करने लगा। गोसेवाके प्रभाव तथा गोदुग्धके सेवनसे बुढ़ियाका बेटा टी०बी० रोगसे मुक्त हो गया। गोदुग्ध एवं गोसेवाके इस चमत्कारिक प्रभावको देखकर बुढ़ियाके आश्चर्यका तो ठिकाना न रहा, अब तो वह बुढ़िया एवं उसका बेटा दोनों और भी लगनसे अहर्निश गौकी सेवामें जुट गये। गाँववाले उनकी गोसेवासे चकित रहते। गोसेवासे आरोग्य, धन-धान्य तथा सभी फल मिलते हैं। यह घटना प्रत्यक्ष देखी गयी है।—**देवनारायण भट्ट 'दिवाकर'**

राजा दिलीपकी गोसेवा

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्॥

राजा दिलीप नन्दिनी गायकी सेवा कर रहे थे। वह खड़ी रहती, तो राजा खड़े हो जाते, वह गमन करती तो राजा चलते। वह बैठती तो राजा बैठते और वह पानी पीती तभी वे पानी पीनेकी इच्छा करते। जिस प्रकार छाया व्यक्तिका अनुगमन करती है, उसी प्रकार राजा दिलीपने नन्दिनी गायका अनुगमन किया। [**रघुवंश २।६**]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१, सूर्य दक्षिणायन, शरद्‌ऋतु, कार्तिक-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ८।५६ बजेतक	गुरु	अश्वनी सायं ४।१८ बजेतक	२१ अक्टूबर	**मूल** सायं ४।१८ बजेतक।
द्वितीया ,, १०।४२ बजेतक	शुक्र	भरणी रात्रिमें ६।३० बजेतक	२२ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें १।७ बजेसे।
तृतीया ,, १२।४२ बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, ८।५८ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।४२ बजेसे रात्रिमें १२।४२ बजेतक।
चतुर्थी ,, २।५० बजेतक	रवि	रोहिणी ,, ११।३५ बजेतक	२४ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थी (करवाचौथ) व्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ७।५१ बजे।
पंचमी ,, ४।५४ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, २।१० बजेतक	२५ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें १२।५३ बजेसे,
षष्ठी अहोरात्र	मंगल	आर्द्रा ,, ४।३४ बजेतक	२६ ,,	× × × ×
षष्ठी प्रातः ६।४६ बजेतक	बुध	पुनर्वसु अहोरात्र	२७ ,,	**भद्रा** प्रातः ६।४६ बजेसे रात्रिमें ७।३१ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें १२।६ बजेसे।
सप्तमी दिनमें ८।१७ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु प्रातः ६।३७ बजेतक	२८ ,,	**अहोईव्रत।**
अष्टमी ,, ९।२० बजेतक	शुक्र	पुष्य दिनमें ८।१५ बजेतक	२९ ,,	**मूल** दिनमें ८।१५ बजेसे।
नवमी ,, ९।५५ बजेतक	शनि	आश्लेषा ,, ९।२४ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९।५६ बजेसे, **सिंहराशि** दिनमें ९।२४ बजेसे।
दशमी ,, ९।५८ बजेतक	रवि	मघा ,, १०।५ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।५८ बजेतक, **मूल** दिनमें १०।५ बजेतक।
एकादशी ,, ९।३१ बजेतक	सोम	पू०फा० ,, १०।१५ बजेतक	१ नवम्बर	**रम्भा एकादशीव्रत** (सबका), **गोवत्सद्वादशी, कन्याराशि** सायं ४।१० बजेसे।
द्वादशी ,, ८।३४ बजेतक	मंगल	उ०फा० ,, ९।५६ बजेतक	२ ,,	**भौमप्रदोषव्रत, धनतेरस, धन्वन्तरि-जयन्ती।**
त्रयोदशी प्रातः ७।१३ बजेतक	बुध	हस्त ,, ९।१४ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** प्रातः ७।१३ बजेसे रात्रिमें ६।२१ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिमें ८।४३ बजेसे, **नरकचतुर्दशी, श्रीहनुमज्जयन्ती।**
अमावस्या रात्रिमें ३।३१ बजेतक	गुरु	चित्रा ,, ८।१२ बजेतक	४ ,,	**अमावस्या, दीपावली।**

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-हेमन्त-ऋतु, कार्तिक-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १।१९ बजेतक	शुक्र	स्वाती प्रातः ६।५२ बजेतक	५ नवम्बर	**अन्नकूट, गोवर्धनपूजा।**
द्वितीया ,, ११।० बजेतक	शनि	अनुराधा रात्रिमें ३।४३ बजेतक	६ ,,	**काशीमें गोवर्धनपूजा, भैयादूज, यमद्वितीया, विशाखाका सूर्य** रात्रिमें ३।५ बजे, **मूल** रात्रिमें ३।४३ बजेसे।
तृतीया ,, ८।३६ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, २।१ बजेतक	७ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें २।१ बजेसे।
चतुर्थी ,, ६।१५ बजेतक	सोम	मूल ,, १२।२३ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** प्रातः ७।२६ बजेसे रात्रिमें ६।१५ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** रात्रिमें १२।२३ बजेतक।
पंचमी सायं ४।१ बजेतक	मंगल	पू०षा० ,, १०।५४ बजेतक	९ ,,	**मकरराशि** रात्रिशेष ४।३५ बजेसे।
षष्ठी दिनमें १।५७ बजेतक	बुध	उ०षा० ,, ९।३६ बजेतक	१० ,,	**श्रीसूर्यषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, १२।९ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, ८।३६ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।९ बजेसे रात्रिमें ११।२४ बजेतक।
अष्टमी ,, १०।४० बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ,, ७।५६ बजेतक	१२ ,,	**गोपाष्टमी, कुम्भराशि** दिनमें ८।१६ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ८।१६ बजे।
नवमी ,, ९।३६ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, ७।४१ बजेतक	१३ ,,	**अक्षयनवमी।**
दशमी ,, ८।५८ बजेतक	रवि	पू०भा० ,, ७।५५ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।५५ बजेसे, **मीनराशि** दिनमें १।५२ बजेसे।
एकादशी ,, ८।५१ बजेतक	सोम	उ०भा० ,, ८।३७ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।५१ बजेतक, **प्रबोधनी एकादशीव्रत** (सबका), **तुलसीविवाह, मूल** रात्रिमें ८।३७ बजेसे।
द्वादशी ,, ९।१५ बजेतक	मंगल	रेवती ,, ९।५१ बजेतक	१६ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ९।५१ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ९।५१ बजे, **भौमप्रदोषव्रत, वृश्चिक-संक्रान्ति** रात्रिमें १२।५८ बजे, **हेमन्तऋतु** प्रारम्भ।
त्रयोदशी ,, १०।१० बजेतक	बुध	अश्वनी ,, ११।३१ बजेतक	१७ ,,	**श्रीवैकुण्ठचतुर्दशीव्रत, मूल** रात्रिमें ११।३१ बजेतक।
चतुर्दशी ,, ११।३३ बजेतक	गुरु	भरणी ,, १।३८ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।३३ बजेसे रात्रिमें १२।२६ बजेतक, **व्रत-पूर्णिमा, काशीमें देवदीपावली।**
पूर्णिमा ,, १।१८ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, ४।२ बजेतक	१९ ,,	**कार्तिकपूर्णिमा, वृषराशि** दिनमें ८।१४ बजेसे, **श्रीगुरुनानकजयन्ती, कार्तिक-स्नान** समाप्त।

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७७ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७८ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ६८,५३,८५,२०० (अड़सठ करोड़, तिरपन लाख, पचासी हजार, दो सौ)।

(ख) नाम-संख्या १०,९६,६१,६३,२०० (दस अरब, छानबे करोड़, इकसठ लाख, तिरसठ हजार, दो सौ)।

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर कनाडा, जर्मनी, फ्रामिंघम, मलेसिया, मेलबोर्न, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम, स्पेन, सिंगापुर, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंजनु, अंधेरी, अंबाला, अकबरपुर, अकोला, अचरोल, अचानामुरली, अचारपुरा, अजमेर, अदासी, अन्धराठाढ़ी, अनघौरा, अमरकंटक, अमरवाड़ा, अमरावती, अमरावतीघाट, अमृतपुर, अमृतसर, अरनियाजोशी, अरनेठा, अलवर, अलीगंज, अलीपुरकला, अवन्तिकानगर, असदपुर, असवार, असोहा, अहमदपुर, अहमदाबाद, आगर, आगरा, आडंद, आनन्दनगर, आनन्दपुर साहिब, आबूरोड, आमळा, आला [नेपाल], आलोट, आवसर, इंदौर, इंद्राना, इचलकरंजी, इजोत, इटावा, इनायती, इन्दरवास, इलाहाबाद, उज्जैन, उतैली, उदयगीर, उदयपुर, उन्नाव, उमरगा, उरगर, उरतुम, उल्हासनगर, उस्मानाबाद, ऊसरी, एटा, ऋषिकेश, ओराडसकरी, ओबरा, औरंगाबाद, कघारा, कटक, कटघर, कछुवा, कड़ीला, कथैया, कनेई, करजगाँव, करनभाऊ, करनाल, करही (शुक्ल), करीमगंज, करैयाजागीर, करौलिया, कल्याण, कल्याणपुर, कवलपुरामठिया, कसारीडीह, काँकरोली, काटोल, काठमांडो, कानपुर, कानड़ी, कामठी, कालका, कालाडेरा, कालियागंज, कालूखाँड़, किरारी, किशनगढ़, कीसियापुर, कुक्षी, कुटासा, कुठेरा, कुनिहार, कुन्हील पनेरा, कुरुक्षेत्र, कुरुसेंडी, कुलेना, कुलमीपुर, कुर्ला, कुसुमखेर, कूड़ाघाट, केंकरा, केलवैरोड (पूर्व), कोईलारी, कोटरा, कोटद्वार, कोटा, कोकमबाड़, कोथराखुर्द, कोबरा, कोलकाता, कोलार, कोलीढेक, कोसीकला, केन्दुझर, कैथल, कौहाकुड़ा, कौलेती (नेपाल), खंजरपुर, खगड़िया, खजरेट, खजुरीरुण्डा, खजूरी, खड़गपुर, खडगवा, खडगवाँकला, खन्आ, खन्ना, खाखोली, खानकित्ता, खिरकिया, खिलड़ी टिकरा, खुटपला, खुरपा, खुरपावड़ा, खेड़लीगंज, खेड़ारसूलपुर, खेतराजपुर, खेरोट, खेलदेशपाण्डेय, खैराचातर, खैराबाद, गंगधर, गंगातीकलाँ, गंगापुर सिटी, गंजवसौदा, गड़कोट, गडीपुरा, गढ़पुरा, गढेरी, गनेड़ी, गया, गाँधीनगर, गाजियाबाद, गायत्रीनगर, गिठीगाड़ा, गुंडरदेही, गुड़गाँव, गुड़ाकला, गुढ़ा, गुना, गुरुग्राम, गुलबर्गा, गुलाबपुरा, गुलेरगुड़ु, गोकुलनगर, गोकुलेश्वर, गोपरी चाँदपुर, गोपालगंज, गोपालगढ़, गोपेश्वर, गोरखपुर, गौंछेणा, गौरीगंज, ग्वालियर, घगोंट, घघरा, घटोद, घनकॉल, घराकड़ा, घाटवा,

घिंचलाय, घुघली, घोंच, चंडीगढ़, चंदौली, चकबड़, चपकीबघार, चम्बा, चरघरा, चाँडेल, चाँदखेड़ा, चिखलाकसा, चिचोली, चुल्हर, चित्तौड़गढ़, चिन्तपूरणी, चित्रकूट, चुरू, चिचगढ़, चेंगलपट्टू, चेन्नई, चोपड़ा, चोरबड़, चौकाबाग, चौखा, चौखुटिया, चौरास, चौहटन, च्यौडा, छकना, छतरपुर, छपट्टी, छाजाका नागल, छोटालम्बा, जंघोरा, जगदीशपुरा, जगाधरी, जट्टारी, जनापुर, जबलपुर, जयरामपुर, जयपुर, जयप्रभानगर, जयरामपुर, जरुड़, जलगाँव, जलोदाखाटयान, जवाहरनगर, जसवंतढ़, जसो, जाकरपुरा, जॉजगीर, जालना, जानडोल, जामनगर, जामपाली, जावर, जुलगांव, जैतगढ़, जैतारन, जैतो, जैपुर, जैसलसर, जैसलमेर, जोधपुर, जोरावरनगर, जोस्यूड़ा, जौलजीवी, झाँसी, झुन्झूनू, झूलाघाट, टटेड़ा, टिकरीखिलड़ा, टीकमगढ़, ठकुरापार, ठाणे, डड़िहथ, डडूका, डबरा, डबोक, डिंगमंडी, डोंबिवली, ढाँगू, तर्भा, तलवार, ताँडूर, तुगाँव, तिवसा, तेल्हारा, टोपचाँची, तोला, त्रिमूर्तिनगर, थाना, थुलवासा, दक्षिणी पटेरी, दडीबा, दतिया, दत्यारसुनी, दमोह, दरौना, दलसिंहसराय, दलोदारेल, दहमी, दातारामगढ़, दामनजोडी, दायारोड, दिल्ली, टुपुरापुर, दुर्ग, दुर्गानगर, दूनी, देवगलपुर, देवघर, देवमयीपुरवा, देवास, देशनोक, देहरादून, देहली, दौसा, धरवार, धनसार, धर्मपुरा, धर्मशाला, नन्दुरवार, नन्हवाराकला, नयीदिल्ली, नरोही, नलवार, नांदेंड, नवलगढ़, नाकोट, नागछल्ला, नागल, नागपुर, नागौर, नाचनी, नाटली, नानगाँव, नारकण्डा, नारायणपुरा, नारीया बुजुर्ग, नासिक, नाहली, नाहन, निबोई, नीमकाथाना, नीमच, नेवारी, नोएडा, नोखा, नोनीहाट, पंचकूला, पंसारियोंकी पोल, पटना, पटनासिटी, पटाड़िया, पट्टीचौरा, पड़ग, पत्योरा, पद्मनाभपुर, परमणी, परबतसर, परोक, परोख, पत्थरकोट (नेपाल) पलवल, पलेई, पसलहर, पाँडेयढौर, पाटमऊ, पाली, पाहल, पिंडरई, पिजड़ा, पिछोर, पिठौरागढ़, पिथौरा, पिम्परी, पिलखुवा, पीठीपट्टी, पीलवा, पुणे, पुनासा, पुपरी, पुरुणावान्ध्रगोडा, पुरेना, पूरबसराय, पूर्णियाँ, पूरेठकुराइन, पोटली, पोरबन्दर, पौना, प्राचीन टिकैतगंज, फतेहपुर शेरवावाटी फर्रुखाबाद, फागी, फाजिलनगर, फिरवाँसी, फ्रेन्डसकालोनी, फूलवारी, बंगलूरु, बंगलौर, बंबई, बगदड़िया, बगदा, बघेरा, बड़की अकोठी, बटाला, बड़खेरवा, बड़ालू, बनैल, बन्नी, बमेनियाकला, बमोरा, बरनाला, बरेली, बरोदासागर, बरोरी, बरौदियारायन, बसाँव, बसान, बसई, बागपत, बाँगरोद, बाँदनवाड़ा, बाँसवाड़ा, बादपारी, बादशाहपुर, बामौरीताल, बारीकेल, बलांगीर, बालाघाट, बाराकाट (नेपाल) बालूमाजरा, बालेश्वर, बिगहिया, बिटोरा (नेपाल), बिजनौर, बिदराली, बिरहाकन्हई, बिलासपुर, बिलोदी, बीकानेर, बीग्गा, बीना, बीदर, बुरहानपुर, बुलन्दशहर, बुल्ढाणा, बूढ़ारावपारा, बेकोना, बेगूसराय, बेरलीखुर्द, बेलड़ा, बेनियाकावास, बेलगाँव, बेलगावी, बसोली, बेरहामपुर, बैकुंठपुर, बैतूल, बैंतूलगंज, बोकारो, बोरनार, बोराडा, बौरीअरब, बोरीवली, ब्यावर, ब्यौही, ब्रह्मनपुर, भटिण्डा, भट्टू (बैजनाथ), भईन्दर, भटगाँव, भदवागढ़, भन्सुली, मयन्दर, भरतपुर, भलस्वाईसापुर, भवराणा, भागलपुर, भावनगर, भिण्डुवा, भिलाई, भिवण्डी, भीकमगाँव, भीनासर, भीमदासपुर, भीलवाड़ा, भुवनेश्वर, भुसावल, भूड़, भून्तर, भूरेवाल, भेडवन, भैंसड़ा, भैसबोड, भैसलाना, भैसहिया, भोकरदन, भोगपुर, भोड़वालमाजरी, भोपाल, भ्रमरपुर, मंडी, मगतादीस, मझेवला, मणू, मथुरा, मदिरपुरा, मलाँड, मलेनपुरवा, महराजगंज, महरौनी, महका, महथी, महादेवा, महासमुन्द, महू, महेशानी, महेश्वर, माचलपुर, माजिरकाडा, माधोपुर, मानगो, मारवाडमुडवा, मिश्रपुर, मिश्रवलिया, मिर्जापुर, मीतली, मीरारोड, मीलवाँ, मुगालिया, मुंगेर, मुंगेली, मुंडर, मुंबई, मुकुली, मुक्तीपुरा, मुजफ्फरपुर, मुरादाबाद, मुलुंड, मुलवाई, मुस्तफाबाद, मूडियासर, मुगालिया, मूडी, मेंड्ई, मेघौना, मेड़तारोड, मेरठ, मैनपुरी, मोगा, मोहबा, मोहाली, मौजपुर, यमुनानगर, यवतमाल, येवला, रंगिया, रठेरा, रणग्राम, रंजीपुरा, रतनगढ़, रतनपुर, रतनमहका, रन्नौद, रसूलपुर, रहली, राउरकेला, राऊ, राजकोट, राजमहेंदी, राजरूपपुर, रामगंजमंडी राजाआहर,

राधादामोदरपुर, रानीकटरा, रामपुरनैकिन, रायगढ़, रायचूर, रायपुर, रायपुररानी, रायला, रियाबड़ी, रींगस, रुड़की, रुद्रपुर, रेवाड़ी, रैहन, रोहतक, रोहनी, लक्ष्मणगढ़, लखनऊ, लखना, लखीमपुर खीरी, लखीबाग, लटेरी, लमतड़ा, लरछुट, लामिया, लालपुर, लारौन, लावन, लुधियाना, लुहासिहां लोसिंहा, लोहासिंहा, लोहरा, लोहारा, वंशीपुर, वगरेठी, बड़ोदरा, वरकतनगर, वर्धमान, वल्लभनगर, वसंत, वसाँव, वसई, वागोसड़ा, वानासद्दी, वापी, वामोदा, वाराकला, वाराणसी, बासउरकली, विजयनगर, विजयवासन गाँव, विदिशा, विनोवानगर, विराटनगर, विवेकानन्दनगर, विशाखापट्टनम, विशाड़, विश्वेसरनगर, वेरावल, वैकुंठपुर, वैशाली, वैशालीनगर, वैसाट्ठी, वोरावली, शंकरगंज, शमीरपुर, शहावाद, शाजापुर, शामती, शाहगंज, शाहपुर, मनियारीपट्टी, शिमला, शिवपुरसपडी, शिवली, श्रीगंगानगर, श्रीडूँगरगढ़, संगावली, संघर, सतना, सनावद, सपलेड, सपिया, सफीपुर, सरथुआ, सरदमपिंडारा, सरदार शहर, सरयाँज, सरसौंदा, सलायड, सवाई माधोपुर, ससना, सहता, सांगली, सागर, सागौनी, सादाबाद, सादुलपुर, सामला, सालोन–बी., साहवा, साहू, सिंगापुर, सिंगहायुसुभपुर, सिंहकालोनी, सिकन्दराराऊ, सिकहुला, सिडको, सिमराटाँड, सियाग, सिरपुर कागजनगर, सिरसा, सिरहौल, सिरेसादगाँव, सिरोही, सिलीगुड़ी, सिवानी, सीकर, सीतामढ़ी, सीनखेड़ा, सुन्दरी, सुखलिया, सुगवा, सुजानगढ़, सुजानदेसर, सुधारबाजार, सुरला, सुर्री, सुल्तानपुर, सूरत, सेमरामेडौल, सेमराहाट, सेंठा, सेरो, सेलम, सेहलंग, सोरखी, सोलापुर, हटसारी, हटिबेरिया, हतीसा, हनुमानगढ़, हमीरपुर, हरदी, हरसोदरा, हराबाग, हरिद्वार, हरियाना, हल्द्वानी, हल्दौर, हल्लीखेड़ा, हसनपालीया, हसनपुर, हसलपुर, हाँसी, हॉसोल, हाड़ौती, हाथीदेह, हापुड़, हाबड़ा, हिंगोली, हिगोलकला, हिमायतनगर, हिरणमगरी, हिरनौदा, हिर्री, हिसार, हुमरस, हुबली, हुमायूँपुर, हुरमतगंज, हैदराबाद, होडल, होशंगाबाद, होशियारपुर।

श्रीभगवन्नाम–जपकी महिमा

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥
नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥
चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

[श्रीरामचरितमानस]

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१।११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार अड़सठ करोड़, तिरपन लाख, पचासी हजार, दो सौ मन्त्रके नाम-जप हुए हैं। **पिछले वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष श्रीभगवन्नाम-जप एवं जापकोंकी संख्यामें कुछ कमी हुई है।** भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि जपकी संख्यामें विशेष उत्साह दिखलायें, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें और वृद्धि हो सके। आशा है, अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०७९)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा

करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक १९। ११। २०२१ ई०) शुक्रवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०७९ दिन-शनिवार (दिनांक १६। ४। २०२२)-को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रात:काल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता, मोबाइल नम्बर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) **जापक महानुभावोंको प्रतिवर्ष श्रीभगवन्नाम-जपकी सूचना अवश्य दे देनी चाहिये।**

(१२) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

प्रेमप्रकाश लक्कड़

सम्पादक—'कल्याण'

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे। कलि न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे॥
राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे। राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज रे॥
राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे। मनि लिये फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे॥
राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे। कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे॥
राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे। राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे॥

[विनय-पत्रिका]

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता (मोबाइल नम्बरसहित) साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये, जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। —सम्पादक

संसार और सुख

(श्रीनारायणजी तिवारी)

अपने समयके एक प्रतापी और प्रजापालक महाराज संसारसे उपराम होकर राज्य युवराजको सौंप वन जा रहे थे। रास्तेमें उन्हें एक तेजस्वी वृद्ध मिले। संस्कारवश राजाने उन्हें प्रणाम किया तो वृद्धने हँसते हुए पूछा—राजन्! आज आप बिना तामझाम, हाथी, रथ, सेवक, सुरक्षा-सैनिकोंके कहाँ जा रहे हैं?

राजाने उत्तर दिया—मैं संसार छोड़कर जा रहा हूँ। अब बहुत हो गया—बस। वृद्धने फिर पूछा—राजन्! क्या आपका संकल्प दृढ़ और निश्चय पक्का है? क्योंकि मेरे अनुभवसे लोग किसी उत्तेजनावश, क्रोधमें, अहंकारमें, उपेक्षासे, अपमानसे, पराजयसे, किसी बड़ी हानि या स्वजनकी मृत्युके कारण संसारसे ऊबकर उसे छोड़नेका निर्णय तो ले लेते हैं, परंतु संसार छोड़ते नहीं, या तो वे अपने पुराने परिवेशमें लौट आते हैं या जहाँ रहते हैं—वह चाहे भीषण वन, श्मशान, बीहड़ या एकान्त ही क्यों न हो, फिर वहाँ संसार निर्मित कर लेते हैं—मनको समझा लेते हैं—खुदको धोखा देते हैं।

इस कथनके बाद सहसा राजाको यह जाननेकी रुचि जाग्रत् हुई कि इतने कटु एवं स्पष्टवादी ये वृद्ध सज्जन कौन हैं? राजाने विनम्रतासे पूछा—महोदय! यदि आप अन्यथा न लें तो मुझे अपना परिचय देकर कृतार्थ करें।

वृद्धने फिर सहास्य उत्तर दिया—राजन्! मैं वही संसार हूँ, जिसे तुम छोड़े जा रहे हो। हतप्रभ राजाने उन्हें पुनः प्रणाम किया और निश्छल हृदयसे पूछा—महात्मन्! कृपाकर आप मेरी एक बड़ी पुरानी जिज्ञासाका उत्तर देनेकी कृपा करें। मैं परम्परागत राजवंशमें जन्मा कुलीन क्षत्रिय राजा हूँ। लोग एक विद्या पढ़ते हैं, मुझे मेरे कैलासवासी पिताने कठोर अनुशासन सीखने गुरुकुल भेजा, जहाँ रहकर मैंने कई विद्याएँ सीखीं। मैंने गृहस्थधर्म अपनाया, एक नहीं दस विवाह किये—मेरे कई पुत्र हैं। कोई एक कुँआ खुदवाकर पुण्यलाभकी आशा करता है, मैंने हजारों कुएँ; बावड़ी; सरोवर बनवाये, कठिन स्थानोंके लिये छायादार मार्ग बनवाये, कई यज्ञ; अनुष्ठान; व्रत किये, देवालयोंका निर्माण किया, युद्ध किये, विजय प्राप्त की, अनेक ब्राह्मणोंको भूमि; गौ; स्वर्णका दान किया, विद्यालय; विश्रामालय; भोजनालय बनवाये, पर इसके बाद भी मुझे 'सुख' नहीं मिला। मेरे प्रयत्न और पुरुषार्थमें क्या कमी रह गयी? प्रश्न सुनकर संसाररूपी वृद्धने बड़े स्नेहसे राजाका हाथ पकड़ा और पासके ही एक करीलके वृक्षके नीचे जाकर एक लम्बी साँस लेकर करुणाभरी दृष्टिसे राजाको देखकर उत्तर दिया—राजन्! यह प्रश्न कठिन ही नहीं जटिल भी है और कालजयी भी। शायद जबसे सृष्टि हुई है, संसार बना है, तबसे सभी व्यक्तियोंके मनमें जीवनके किसी-न-किसी समय यह प्रश्न जरूर उठता है कि इतने प्रयत्न, पुरुषार्थ, परिश्रमके बाद भी उन्हें 'सुख' क्यों नहीं मिला?

राजन्! चूँकि तुम संसारको छोड़नेका संकल्प ले चुके हो, अतः मैं तुम्हें एक गोपनीय सत्य बताता हूँ। जैसे करीलके झाड़का प्राकृतिक नियम है कि इसमेंसे काँटे झरते हैं—तुम दशकों इसके नीचे बैठे रहो, प्रार्थना; यज्ञ; पुरुषार्थ; परिश्रम सब करो, किंतु सब व्यर्थ—इसमेंसे 'मौलश्री' वृक्षकी तरह फूल कभी न झरेंगे। ऐसे ही त्रिकाल सत्य तो यह है कि मेरे पास 'सुख' है ही नहीं तो मैं किसीको कहाँसे दूँ? जैसे करीलसे फूल नहीं झर सकते, वैसे ही संसारसे सुख नहीं हो सकता। हाँ, सुखकी मृगतृष्णा जरूर मनुष्योंको इस बिन्दुसे उस बिन्दु, इस जगहसे उस जगह दौड़ाती रहती है और एक दिन मनुष्यरूपी मृग थककर—हताश होकर मृत्युका वरण कर लेता है, पर 'सुख' नहीं पाता। सुख तो प्रारब्धके अधीन है। सत्कर्म करते रहना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझना चाहिये।

राजा आश्चर्यसे भर गये कि इस उत्तरको सुननेके बाद वृद्धका कहीं दूर-दूरतक पता न था, करीलसे काँटे झर रहे थे।

राजाको अपने प्रश्नका उत्तर मिल गया था—अब कुछ जाननेको शेष न था। संसारसे सुखकी अपेक्षा ही सब दु:खोंका मूल और मृगतृष्णा है। वास्तविक सुख तो भगवान्का आश्रय लेकर संसारको वासुदेवमय समझकर अनासक्त भावसे वैसा ही वर्ताव करनेमें है और कोई दूसरा रास्ता नहीं है—**'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'**

कृपानुभूति

(१)

भगवान् हैं

सन् १९८१ की घटना है। मेरी माताजीका देहान्त बीकानेरमें हो गया था। माताजीका अस्थि-कलश और काकाजीको साथ लेकर मैं हरिद्वार गया था। हरिद्वारमें सभी धार्मिक कार्य सम्पन्न करके हमलोग हरकी पैड़ीपर घूमने लगे। वहाँ कीर्तन, कथा और अनाथालयोंके लिये चन्दा आदि देते-देते मेरे पासका सारा रुपया खत्म हो गया तो मैंने काकाजीसे भी दो सौ रुपये ले लिये।

दोपहरको हमने हरिद्वारसे दिल्लीकी बस पकड़ी, शामको दिल्ली स्टेशन पहुँचे। टिकट-खिड़कीपर जब जेबमें हाथ डाला तो उसमें रुपये नहीं मिले, काकाजीसे माँगा तो उन्होंने कहा—मेरे पास जो था, सब मैंने हरिद्वारमें तुमको दे दिया था।

मैं उदास मुँह लिये दूर किनारे खड़ा सोचने लगा कि अब क्या होगा? इतनेमें एक लड़का आया तथा पूछा—भाई साहब! बीकानेरके टिकट चाहिये? मैंने पूछा, कितने हैं, उसने प्रत्युत्तर दिया दो टिकट हैं—एक रिजर्वेशन तथा दूसरा जनरलका है।

मैंने बड़े उदास मुँहसे कहा—'भाई, मेरे पास टिकटके रुपये नहीं हैं।' कुछ देर मेरे चेहरेको ध्यानसे देखनेके बाद उसने कहा कि आप वैद्य ठाकुर प्रसादजीके लड़के हैं क्या? इतना सुनते ही मैंने हँसते हुए कहा, 'हाँ, मैं उनका ही लड़का हूँ।' उसने रिजर्वेशन किसके नामका है, बतलाकर टिकट दिये और चला गया।

ट्रेन समयपर लग चुकी थी। मैं रिजर्वेशनवाले तथा काकाजी जनरल डिब्बेमें बैठ गये। ट्रेनमें प्राय: टी०टी० ट्रेन रवाना होनेके बाद ही आता है, पर जैसे ही मैं सीटपर बैठा आकर पूछा क्या नाम है? मैंने कहा, रामदेव। उसने फिर पूछा कि असममें जानेके बाद क्या नाम बदल गया, आपका नाम श्रीधर नहीं है? मैं अवाक्-सा उसके मुँहकी तरफ देखता रहा। उसने कहा, मेरे भाईका ससुराल बड़ेपेटा रोडमें ही है, एवं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। मैंने सारी घटना उनको बतलायी, तब उन्होंने काकाजीका भी रिजर्वेशन उसमें कराया तथा हम दोनोंको खाना भी खिलाया।

अब चिन्तन करें, वह लड़का मेरे पास टिकट बेचने क्यों आया? कैसे टी०टी० पहले आया, वह भी जान-पहचानवाला। क्या यह सब ऊपरवालेकी मेहरबानी नहीं? अस्तु, कहना ही होगा 'भगवान् हैं।'—**श्रीधर शर्मा**

(२)

वह कौन था?

बात बहुत पुरानी नहीं है, सन् २००७ में मैं अपने पुत्र एवं पुत्रवधूके साथ हैदराबादसे रामेश्वरम् जा रही थी। भगवान् आशुतोषके दर्शनोंकी मनमें उमंग थी। हम हैदराबादसे चेन्नई फ्लाइटसे आये, रात्रि सात-आठ बजेका समय था, हवाई अड्डेपर पता चला कि उस दिन रामसेतुबन्ध तोड़नेकी योजनाको लेकर हड़ताल थी और कोई वाहन रेलवे स्टेशनके लिये नहीं जा रहा था।

रेल आनेमें भी ज्यादा समय नहीं था। हम किंकर्तव्यविमूढ़-से खड़े थे। तभी एक सज्जन आये और कहने लगे कि मेरी प्रीपेड कार है, उससे आपको ले चलते हैं, मुझे भी उसी तरफ जाना है। मनमें कई कुशंकाएँ उठ रही थीं, परंतु हमारे सामने अन्य कोई विकल्प ही नहीं था। वे हमें अपनी कारसे लोकल स्टेशन तिरुसुलमतक लाये और हमें कुछ सोचनेका समय दिये बिना कारसे उतरकर सीधे काउण्टरपर गये और लोकल ट्रेनके तीन टिकट खरीदकर हमें देकर जल्दीसे चले गये। हम उन्हें धन्यवादतक नहीं दे पाये।

लोकल ट्रेनसे हम चेन्नई रेलवे स्टेशनपर पहुँचे, जहाँ मदुरैके लिये ट्रेन छूटनेवाली ही थी, जिसमें हमारा रिजर्वेशन था। ट्रेनके चलनेपर हमें यह आश्चर्य हुआ कि उन सज्जनने हमारी सहायता न की होती तो हम ट्रेन नहीं पकड़ सकते थे। बार-बार प्रभुकी इस कृपाकी अनुभूतिकर मेरा मन द्रवीभूत हो जाता है, जीवनकी विषम परिस्थितियोंमें अपने कन्हैयाका सहारा मुझे सदैव मिलता रहा है।—**श्रीमती रुक्मणी चौरसिया**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

नामकी तख्ती

लगभग २०-२५ वर्ष पुरानी घटना है। हमारे नगरके सार्वजनिक चिकित्सालयकी सहायताके लिये धन एकत्रित करनेका निश्चय किया गया। समितिने तय किया कि दाता यदि दस हजार रुपये एक मुश्त दे तो उसके नामकी संगमरमरकी तख्ती चिकित्सालयकी दीवारपर लगायी जायगी। समितिके सदस्य नगरके धनी सेठ गोविन्द भाई केशोभाई सरावगीके पास भी गये और इस पुण्य कार्यके लिये चन्दा माँगा। नगर सेठने तुरंत चेक काट दिया, किंतु उसमें दस हजार रुपयेमें सौ रुपये कम थे। समितिके एक सदस्यने कहा—'सेठ साहब, यदि आप सौ रुपये और दे दें तो आपके नामकी तख्ती चिकित्सालयमें लग जायगी।'

इसपर नगर सेठने कहा—'भैया, ईश्वरने मुझे जो कुछ दिया है, वह लोकसेवाके लिये है, नामकी तख्ती लगवानेके लिये नहीं।'

ऐसे नि:स्वार्थ सेवाभावी इस संसारमें दुर्लभ ही मिलते हैं।—**डॉ० श्याम मनोहर व्यास**

(२)

खेल-भावनाकी अद्भुत मिसाल

यह प्रसंग टोक्यो ओलम्पिकमें पुरुषोंके हाई जम्प फाइनलका है। फाइनलमें इटलीके जियानमारको ताम्बरीका सामना कतरके मुताज़ इसा बर्शिमसे हुआ। दोनोंने २.३७ मीटरकी छलांग लगायी और बराबरीपर रहे।

उसके बाद ओलम्पिक अधिकारियोंने उनमेंसे प्रत्येकको तीन और प्रयास दिये, लेकिन वे २.३७ मीटरसे अधिकतक नहीं पहुँच पाये। तत्पश्चात् उन दोनोंको एक और प्रयास दिया गया, लेकिन उसी वक्त ताम्बरी पैरमें गम्भीर चोटके कारण अन्तिम प्रयाससे पीछे हट गये।

यह वो क्षण था, जब मुताज़ बर्शिमके सामने कोई दूसरा विरोधी नहीं था और उस पल वह आसानीसे स्वर्णपदक प्राप्त कर सकते थे, लेकिन बर्शिमने उस समय जो निर्णय लिया, वह खेल-भावनाकी अद्भुत मिसाल थी। कुछ सोचकर उसने एक अधिकारीसे पूछा, 'अगर मैं भी अन्तिम प्रयाससे पीछे हट जाऊँ तो क्या हम दोनोंके बीच गोल्डमैडल साझा किया जा सकता है?'

कुछ देर बाद एक अधिकारी जाँचकर पुष्टि करता है और कहता है, 'हाँ, बेशक, गोल्ड मैडल आप दोनोंके बीच साझा किया जायगा।'

बर्शिमने और ज्यादा सोचना उचित नहीं समझा। उसने आखिरी प्रयाससे हटनेकी घोषणा कर दी।

यह देख उसका प्रतिद्वन्द्वी इटलीका खिलाड़ी ताम्बरी दौड़ा और मुताज़ बर्शिमको गले लगाकर खुशीसे चिल्लाया। फिर दोनों भावुक होकर रोने लगे।

लोगोंने जो देखा, वह खेलोंमें प्यारका एक बड़ा हिस्सा था, जो दिलोंको छूता है। यह अवर्णनीय खेल-भावनाको प्रकट करता है, जो धर्मों, रंगों और देशकी सीमाओंको अप्रासंगिक बना देता है!

यद्यपि ओलम्पिक गोल्ड मैडल हर खिलाड़ीका सपना होता है और इसके लिये वह वर्षों कठिन परिश्रम करता है, परंतु इंसानका किरदार किसी भी मैडलसे बड़ा है। **[प्रेषक—प्रशान्त अग्रवाल]**

(३)

दया

बालक कहींसे लौट रहा था। सन्ध्या हो चुकी थी और मार्ग जंगलमें होकर था। बालक खेलता-कूदता आ रहा था। अचानक एक पेड़की नीची टहनीपर देखता क्या है कि एक छोटे-से घोंसलेमें दो अंडे रखे हैं और उनपर एक चिड़िया बैठी है। बालक रुक गया। उसे वे अंडे बड़े अच्छे लगे। देखनेमें सुन्दर तो थे ही, साथ ही बालसुलभ कौतूहल भी था। उसने सोचा कि इन अंडोंको ले चलूँ और माँको दिखाऊँ तो वह बहुत खुश होगी। वह घोंसलेकी ओर बढ़ा, फिर ठिठका। चिड़िया एक साथ फुर्रसे उड़ गयी। घोंसलेके बीचमें जरा-सा गड्ढा था, जिसमें एक-दूसरेसे सटे दोनों अंडे रखे थे। चिड़िया उड़कर ऊपरकी डालपर जा बैठी और चीं-चीं करने लगी। बालकने धीरे-धीरे घोंसलेकी ओर हाथ बढ़ाया और फिर खींच लिया। नहीं, उसे अंडे नहीं उठाने चाहिये। पर क्यों? माँ उन्हें

देखकर कितनी प्रसन्न होगी? और भाई-बहनें? कहेंगे कि वाह, क्या बढ़िया चीज लाया है।

उसने जी कड़ा किया और दोनों अंडे हाथमें उठा लिये। चिड़िया जोरसे चीत्कार कर उठी, पर बालक रुका नहीं। अंडे धीरेसे मुट्ठीमें दबाकर और हाथको कोटकी जेबमें डालकर वह चल दिया।

घर आकर उसने साँस ली। हाँफता हुआ बोला, 'ओ माँ, ओ माँ! देख, कैसी बढ़िया चीज लाया हूँ।'

माँने अंडे देखे और बालककी आशाके विपरीत उनका चेहरा एकदम गम्भीर हो गया। बोली—'हाय! तूने यह क्या किया।'

बालकने कहा—'देखती नहीं कैसे सुन्दर हैं।' माँ कहती गयी, 'तूने यह नहीं सोचा कि चिड़िया कितनी हैरान होगी! वह बार-बार घोंसलेपर आकर इन्हें खोजती होगी और अपना सिर पीटती होगी। हाय! तैंने यह क्या किया? ······और······और······अगर लाना ही था तो एक ले आता। कम-से-कम एक तो उसके लिये छोड़ ही आता।'

बालकको अपनी भूल मालूम हुई, पर अब वह क्या करे? देर जो हो चुकी थी।

माँ रात-भर नहीं सो सकी और बालक भी सारी रात सपनेमें चिड़ियाका भयंकर आर्त्तनाद सुनता रहा, उसका फड़फड़ाना देखता रहा।

सबेरे उठते ही वह दौड़ा-दौड़ा गया। बड़ी मुश्किलसे उसे वह जगह मिली।

उसने देखा कि चिड़िया सूने घोंसलेके एक द्वारपर सुस्त-सी बैठी है। शायद रातभर रोते-रोते थक गयी थी।

बालकके आगे बढ़ते ही वह उड़कर दूसरी शाखापर जा बैठी। बालकने दोनों अंडे घोंसलेमें रख दिये और आड़में खड़े होकर देखने लगा कि आगे क्या होता है?

चिड़िया आयी, घोंसलेपर बैठ गयी। उसने तिरछी गर्दन करके अंडोंको घूरा। बालकको हर्ष हुआ; लेकिन उसने देखा कि चिड़ियाकी आँखोंमें वह दुलार नहीं है, जो पहले था। वह चुपचाप घोंसलेके किनारेपर टिकी रही, पर अंडोंपर नहीं बैठी।

बालक देरतक खड़ा-खड़ा इस हृदयस्पर्शी दृश्यको देखता रहा, देखता रहा। उसके जीमें आता था कि वह उस वेदनासे विह्वल चिड़ियाको पकड़ ले और कहे कि मेरे अपराधको क्षमा कर दे और अपने इन पेटके जायोंको स्वीकार कर ले। मेरे लिये नहीं, भगवान्‌के लिये तू एक बार फिर इन्हें अपने पंखोंके सायेमें समेट ले। पर चिड़ियाकी खोयी ममता फिर नहीं लौटी, नहीं लौटी।

निराश बालक घरकी ओर चला तो उसका हृदय बहुत भारी था।

जीवदयाका यह ऐसा पाठ था कि वह बालकके हृदयपटलपर गहरा अंकित हो गया और जबतक जीया प्राणिमात्रके प्रति सदा दयावान् बना रहा।

इस बालकका नाम था सी०एफ० एण्ड्रयूज, जो आगे चलकर 'दीनबन्धु' कहलाये—दीनबन्धु एण्ड्रयूज—भारतके अनन्य मित्र और हितैषी।—**यशपाल जैन**

(४)

तुलसीकी पत्तियोंसे विभिन्न रोगोंका उपचार

उल्टीमें (जी मिचलानेमें)—तुलसीकी पत्तियोंका रस पीनेसे उल्टी बन्द हो जाती है। अथवा शहद एवं तुलसीका रस मिलाकर चाटनेसे भी उल्टी, जी मिचलाना ठीक हो जाता है।

खाँसी, छातीमें दर्द एवं जीर्ण ज्वर होनेपर—ऐसी खाँसी, जिसमें छातीमें दर्द हो, जीर्ण ज्वर हो, तुलसीके पत्तोंका रस और मिश्री मिलाकर पीनेसे लाभ होता है।

प्रयोजनमें अन्य वैकल्पिक नुस्खे—

१-३ ग्राम तुलसीका रस, ६ ग्राम मिश्री, ३ ग्राम काली मिर्च मिलाकर लेनेसे छातीकी जकड़न, पुराने बुखार और खाँसीमें लाभ होता है।

२-ज्वर एवं खाँसी रोगमें तुलसीकी पत्तियोंका रस ३ ग्राम, अदरकका रस ३ ग्राम, शहद ५ ग्राम मिलाकर सुबह-शाम चाटें लाभ होगा।

३-१२ ग्राम हरी तुलसीके रसका काढ़ा बनाकर

चीनी एवं दूध मिलाकर पीनेसे खाँसी एवं छातीका दर्द दूर होता है।

४-जुकाम, खाँसी, गलशोथ (फेफड़ोंमें कफ जमा हो)-में तुलसीके सूखे पत्ते, कत्था, कपूर और इलायची समभागमें और नौ गुनी शक्कर, सबको बारीक पीस लें। इसे चुटकीभर सुबह-शाम सेवन करनेसे जमा हुआ कफ निकल जाता है।

कुकुर खाँसी—तुलसीके पत्ते और काली मिर्च समान मात्रामें पीसकर, इसकी मूँगके बराबर गोलियाँ बना लें। एक-एक गोली चार बार दें। इससे कुकुर खाँसी ठीक हो जाती है।

हर प्रकारके ज्वरमें—२० तुलसीके पत्ते, २० काली मिर्च, जरा-सा अदरक और दालचीनी एक गिलास पानीमें, चायकी तरह उबालकर चीनी मिलाकर, गर्म-गर्म पीनेसे हर प्रकारके ज्वर (बुखार)-में लाभ होता है। अथवा

१२ ग्राम तुलसीके पत्तोंका रस नित्य पीनेसे ज्वर ठीक हो जाता है।

१० तुलसीके पत्ते, ३ ग्राम सोंठ, ५ ग्राम लौंग, २२ काली मिर्च, स्वादके अनुसार चीनी डालकर उबालें। जब पानी आधा रह जाय तो रोगीको पिलायें। ज्वर उतर जायगा। यदि ज्वर में घबराहट हो तो तुलसीके पत्तोंके रसमें शक्कर मिलाकर पिलायें।

मलेरिया ज्वर—तुलसीकी पत्तियाँ नित्य खानेसे मलेरिया ज्वर नहीं रहता।

इन्फ्लूएन्जा—इसे संक्षेपमें फ्लू कहते हैं। इसमें अचानक शरीरकी मांसपेशियोंमें दर्दके साथ बुखार आता है। अधिकतर यह ज्वर शीत ऋतु या वसन्त ऋतुमें होता है। यह रोग संक्रमणसे फैलता है। इसके लक्षणोंमें—हमेशा कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता रहता है। पहले अचानक सर्दी लगती है और फिर १०२, १०३ डिग्रीतक ज्वर हो जाता है। बुखारके साथ-साथ इसकी पहचानके अन्य लक्षण इस प्रकार हैं—

छींके आना, बदनमें दर्द, सिरमें दर्द, सूखी खाँसी, अरुचि और कमजोरी होना।

दो दिन बुखार रहकर, फिर उतरने लगता है। एक व्यक्तिको होनेपर, दूसरेको भी प्रभावितकर फैल सकता है।

ऐसेमें भीड़में जाने और थकानवाले कार्यसे बचना चाहिये। गर्म पानीमें नमक डालकर नित्य गरारे करना और शरीरपर सरसोंके तेलसे मालिश करना चाहिये। सरसोंके तेलको नित्य सूँघनेसे भी लाभ मिलता है।

जबतक बुखार रहे, अन्नका कोई पदार्थ खानेको न दे, पर चाय, दूध दे सकते हैं।

मुसम्मीका रस एवं मुनक्का भी दिया जा सकता है।

वात-व्याधि—तुलसीके पत्तोंको उबालते हुए इसकी भाप वातग्रस्त अंगोंपर लगा दें तथा इसके ही गर्म पानीसे धोयें। तुलसीके पत्ते, काली मिर्च, गायका घी—तीनों मिलाकर सेवन करें। इससे वात-व्याधिमें लाभ होता है।

बच्चोंके दाँत सरलतासे निकलनेके लिये—तुलसीके रसको शहदमें मिलाकर मसूड़ोंपर लगानेसे और थोड़ा-सा चटानेसे दाँत बिना कष्टके निकल आते हैं। अथवा तुलसीके पत्तोंका चूर्ण अनारके शर्बतके साथ देनेसे भी बच्चोंके दाँत सरलतासे निकल आते हैं।

दाँत-दर्दमें तुलसी—तुलसीका रस, काली मिर्च पीसकर गोली बना लें। इस गोलीको दुखते दाँतके नीचे दबाये रखनेसे दाँत-दर्द शान्त होता है।

स्मरण-शक्ति-वृद्धिमें तुलसीका उपयोग—१० तुलसीके पत्ते, ५ काली मिर्च, ५ बादाम पीसकर थोड़ा-सा शहद और पानी मिलाकर, ठंडाईकी तरह पीनेसे स्मरणशक्ति बढ़ती है।

मस्तिष्ककी गर्मी शान्त करनेमें तुलसी—५ तुलसीके पत्ते, ५ काली मिर्च पीस लें, इसे एक गिलास पानीमें मिलाकर प्रातः २१ दिनतक पीयें। इन्हें चबाकर भी खा सकते हैं। इसके सेवनसे मस्तिष्ककी गर्मी दूर होती है।

मोटापा कम करनेमें—एक कप पानीमें तुलसीके पत्तोंका रस एवं शहद या मिस्री मिलाकर पीनेसे मोटापा घटता है।—**नरेन्द्रनाथ जैन**

मनन करने योग्य

'दीर्घसूत्री विनश्यति'

किसी स्थानपर एक तालाब था, जो बहुत अधिक गहरा नहीं था। उस तालाबमें बहुत-सी मछलियाँ रहा करती थीं और तीन बड़े मत्स्य भी उनके साथ रहते थे। उनकी आपसमें बड़ी अच्छी मैत्री थी। वे साथ-साथ ही इधर-उधर भ्रमण किया करते। उन तीनों मत्स्योंके नाम उनके गुण-कर्म एवं स्वभावके अनुसार थे। पहले मत्स्यका नाम था—'अनागतविधाता (दीर्घदर्शी या दूरदर्शी)'। किसी संकटके आनेसे पहले जो अपनी रक्षाका उपाय कर लेता है, वह अनागतविधाता कहलाता है। दूसरे मत्स्यका नाम था—'प्रत्युत्पन्नमति (तत्कालप्रज्ञ)'। प्रत्युत्पन्नमति उसे कहते हैं, जिसे ठीक समयपर आत्मरक्षाका उपाय सूझ जाता है। तीसरे मत्स्यका नाम था—'दीर्घसूत्री'। दीर्घसूत्रीका मतलब है कर्तव्य-अकर्तव्यका निश्चय करनेमें अनावश्यक विलम्ब करनेवाला—आलसी या प्रमादी।

ये तीनों ही मत्स्य अपने-अपने स्वभावके अनुसार उस जलाशयमें रहा करते थे।

एक बारकी बात है, कुछ मछलीमारोंने मछलियाँ पकड़नेके लिये उस जलाशयके चारों ओर छोटी-छोटी नालियाँ बना दीं, जिस कारण धीरे-धीरे चारों तरफ पानी बहने लगा।

यह संकट आया देखकर उनमें जो दूरतककी बात सोचनेवाला पहला मत्स्य अनागतविधाता था, उसने अपने उन दो साथी मत्स्योंसे कहा—भाइयो! देखो, हम लोगोंके लिये महान् संकट उपस्थित हो गया है। तालाबका पानी धीरे-धीरे कम हो रहा है और थोड़ी ही देरमें सब पानी बाहर निकल जायगा तथा वे मछुआरे हमें पकड़ लेंगे, इसलिये उससे पहले ही हमलोगोंको किसी प्रकार यहाँसे बच निकलना चाहिये। क्योंकि संकट आनेसे पहले ही जो उसे मिटा देता है, वह कभी संकटमें नहीं पड़ता, आपलोगोंको मेरी बात जँचे तो हमें शीघ्र ही किसी दूसरे जलाशयमें चले जाना चाहिये।

इसपर तीसरा मत्स्य जो दीर्घसूत्री था, वह बोल पड़ा—'मित्र! तुम बात तो ठीक ही कह रहे हो, किंतु मेरा तो यह विचार है कि पानी बहुत धीरे-धीरे कम हो रहा है, अभी तो तालबमें पानी बहुत है, अतः इतनी जल्दी क्या है। जब समय आयेगा तब देखा जायगा।'

तदनन्तर प्रत्युत्पन्नमति नामवाला दूसरा मत्स्य दूरदर्शीसे बोला—मित्र! तुम्हारी सलाह उचित ही है, किंतु मुझमें ऐसी प्रतिभा है कि जब संकटकाल उपस्थित होनेको होता है तब मेरी बुद्धि ठीक समयपर उचित निर्णय दे देती है, कभी भूल होती ही नहीं।

पहले मत्स्य (दूरदर्शी)-ने अपने दोनों मित्रोंकी बात सुन ली, किंतु उसे उनकी बात ठीक नहीं लगी, अतः वह वहाँसे धीरेसे एक नालेके रास्ते छिपकर निकलता हुआ दूसरे गहरे जलाशयमें जा पहुँचा और निर्भय हो सुखपूर्वक रहने लगा।

उधर मछुआरोंने देखा कि जलाशयका पानी काफी कम हो गया है तो उन्होंने जाल आदिके सहारे दूसरी अन्य मछलियोंको जालमें फँसा लिया। इधर दीर्घसूत्री नामक मत्स्य भी समयकी प्रतीक्षा ही करता रह गया और अपने आलस्य तथा प्रमादके कारण जालमें फँस गया। अब बच गया प्रत्युत्पन्नमति नामवाला मत्स्य। संकटकी घड़ी तो आ ही चुकी थी, अतः उसने तुरंत युक्तिसे काम लिया। उसने अपने मुँहसे जालको बाहरसे इस प्रकार पकड़ा, जिससे मछुआरोंको लगे कि यह भी जालमें ही फँसा हुआ है। जालको खींचनेपर वह भी अन्य मछलियोंके समान जालको पकड़े हुए बाहर आ गया। मछुआरे उस प्रत्युत्पन्नमति नामक मत्स्यके बुद्धिचातुर्यको समझ न सके। वे जालको खींचकर, उठाकर एक दूसरे बड़े जलाशयके पास गये और वहाँ जालके साथ मछलियोंको उस तालाबके जलमें धोने लगे। प्रत्युत्पन्नमति मत्स्य इसी अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा था। मछुआरोंने ज्यों ही जालको तालाबके पानीमें डुबोया, उसी क्षण उसने अपने मुँहसे पकड़े हुए जालकी ताँतको छोड़ दिया और शीघ्र ही गहरे जलमें अदृश्य हो गया।

इस प्रकार अनागतविधाताने तो पहले ही संकटसे अपनेको बचा लिया, प्रत्युत्पन्नमतिने अवसर आनेपर अपने बुद्धिकौशलसे अपनेको बचा लिया, किंतु जो तीसरा दीर्घसूत्री नामक मत्स्य था, वह अन्य मछलियोंके समान मछुआरोंका भक्ष्य बन गया। [**महाभारत**]

सुभाषित-त्रिवेणी

गीतामें दानके तीन प्रकार

[Three Types of Gift in Gita]

❀ ***सात्त्विक दान*** *(Sāttvika Gift)*—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

दान देना ही कर्तव्य है—ऐसे भावसे जो दान देश तथा काल और पात्रके प्राप्त होनेपर उपकार न करनेवालेके प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

A gift which is bestowed with a sense of duty on one from whom no return is expected, at appropriate time and place, and to a deserving person, that gift has been declared as Sāttvika.

❀ ***राजस दान*** *(Rājasika Gift)*—

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥

किंतु जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकारके प्रयोजनसे अथवा फलको दृष्टिमें रखकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा गया है।

A gift which is bestowed in a grudging spirit and with the object of getting a service in return or in the hope of obtaining a reward, is called Rājasika.

❀ ***तामस दान*** *(Tāmasika Gift)*—

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥

जो दान बिना सत्कारके अथवा तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश-कालमें और कुपात्रके प्रति दिया जाता है, वह दान तामस कहा गया है।

A gift which is made without good grace and in a disdainful spirit out of time and place and to undeserving persons, is said to be Tāmasika.

[श्रीमद्भगवद्गीता १७। २०—२२]

गीतामें त्यागके तीन प्रकार

[Three types of Renunciation in Gita]

❀ ***सात्त्विक त्याग*** *(Sāttvika Renunciation)*—

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥

हे अर्जुन! जो शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है—इसी भावसे आसक्ति और फलका त्याग करके किया जाता है—वही सात्त्विक त्याग माना गया है।

A prescribed duty which is performed simply because it has to be performed, giving up attachment and fruit, that alone has been recognized as the Sāttvika form of Renunciation.

❀ ***राजस त्याग*** *(Rājasika Renunciation)*—

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्॥

जो कुछ कर्म है, वह सब दुःखरूप ही है—ऐसा समझकर यदि कोई शारीरिक क्लेशके भयसे कर्तव्य-कर्मोंका त्याग कर दे, तो वह ऐसा राजस त्याग करके त्यागके फलको किसी प्रकार भी नहीं पाता।

Should anyone give up his duties for fear of physical strain, thinking that all actions are verily painful-practising such Rājasika form of Renunciation, he does not reap the fruit of Renunciation.

❀ ***तामस त्याग*** *(Tāmasika Renunciation)*—

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः॥

(निषिद्ध और काम्य कर्मोंका तो स्वरूपसे त्याग करना उचित ही है) परंतु नियत कर्मका स्वरूपसे त्याग करना उचित नहीं है। इसलिये मोहके कारण उसका त्याग कर देना तामस त्याग कहा गया है।

(Prohibited acts and those that are motivated by desire should no doubt be given up). But it is not advisable to abandon a prescribed duty. Such abandonment through ignorance has been declared as Tāmasika. **[श्रीमद्भगवद्गीता १८। ९, ८, ७]**

साधन-प्रगति-दर्पण (अक्टूबर २०२१)

मनुष्य-जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियोंके चक्रमें सभी योनियाँ प्रारब्ध-भोगके लिये हैं; मात्र मनुष्ययोनिमें ही हमें कर्म करनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त है। यदि हमने इस दुर्लभ अवसरका लाभ उठाकर आत्मकल्याण अर्थात् परमात्मप्राप्तिका प्रयास नहीं किया, तो पता नहीं यह मनुष्य-देह फिर कब मिले। अतएव हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्योंका यथाशक्ति पालन करते हुए आत्मकल्याणके लिये भी सतत प्रयत्नशील रहें।—सम्पादक

प्रश्न	प्रथम * सप्ताह	द्वितीय * सप्ताह	तृतीय * सप्ताह	चतुर्थ * सप्ताह
१-क्या मैंने नित्य प्रात:काल उठकर परमात्माका स्मरण और धन्यवाद किया कि मुझे मानव-शरीरमें रहने और कर्तव्यपालनका सुअवसर प्राप्त हुआ है?				
२-क्या मैंने अपने दैनिक पूजा-पाठ, जप और साधनाकी अपनी निर्धारित गतिविधिको तत्परतासे निभाया है?				
३-क्या मैंने अपने व्यवहारमें संयम और अपनी वाणीपर आवश्यक नियन्त्रण रखा है?				
४-क्या इस सप्ताह मैं कुछ स्वाध्याय और सत्संग कर पाया?				
५-क्या नित्य रात्रिमें सोते समय मैंने अपना सारा प्रपंच-भार भगवान्‌को समर्पितकर सुख-पूर्वक नींद ली है?				

सामान्य टिप्पणी (यदि कोई हो तो)— . . . .

* साधकोंको इस प्रगति-दर्पणका नित्य अवलोकन करना चाहिये और सप्ताहके अन्तमें अपनी प्रगतिका संक्षिप्त-सा विवरण सामनेके कोष्ठकमें लिख लेना चाहिये। कोई विशेष बात हो तो नीचे लिख लेनी चाहिये। भगवत्कृपासे समर्पित साधकोंके कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

नवीन विशिष्ट प्रकाशन—शीघ्र प्रकाश्य

श्रीमद्भगवद्गीता [सचित्र, ग्रन्थाकार] अंग्रेजी—प्रस्तुत ग्रंथ हिन्दी, गुजराती तथा मराठीके बाद अब अंग्रेजीमें भी प्रसंगानुकूल 129 आकर्षक चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर पहली बार प्रकाशित किया जा रहा है।

नोट : बँगला तथा तेलुगुमें भी शीघ्र प्रकाशित करनेकी योजना है।

प्र० ति० 20-09-2021
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

जनवरी सन् २०२२ ई० कल्याण वर्ष ९६ का विशेषाङ्क—

'कृपानुभूति-अङ्क'

कृपानिधान भगवान्‌की कृपा सभी जीवोंपर समानरूपसे रहती है। जीवनमें जब भीषण संकटमयी परिस्थिति आती है तो उपयुक्त समयपर कोई ऐसी आकस्मिक अप्रत्याशित घटना घटित हो जाती है, जिसके कारण अद्भुत ढंगसे हमारी उस संकटसे रक्षा हो जाती है। अपने धर्मग्रन्थ—भागवतादि पुराण, महाभारतादि इतिहास, श्रीरामचरितमानस, आनन्दरामायण, गर्गसंहिता, सन्त-साहित्य एवं लोकसाहित्य भगवत्कृपासम्बन्धी अनुभूतियोंसे भरे पड़े हैं। ऐसी घटनाएँ भगवत्कृपाके प्रति श्रद्धा-विश्वास बढ़ानेवाली होनेके कारण जन-सामान्य द्वारा प्रशंसित रही हैं। विगत पाँच दशकोंसे ये घटनाएँ **'पढ़ो, समझो और करो'** तथा लगभग पन्द्रह वर्षोंसे **'कृपानुभूति'** नामसे स्वतन्त्र स्तम्भके रूपमें प्रकाशित हो रही हैं। कल्याणके पाठकोंकी अनुभूत सत्य घटनाएँ होनेसे यह स्तम्भ अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। अत: भगवत्प्रेमी पाठकोंके विशेष आग्रहको देखते हुए इस वर्ष कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें **'कृपानुभूति-अङ्क'** प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया है, जिसमें भगवल्लीलाका अनुभव करानेवाली रोचक, कथात्मक, स्वयं या किसी महापुरुषद्वारा अनुभूत घटनाएँ दी जायँगी। आशा है यह अंक पूर्व प्रकाशित विशेषाङ्कोंकी भाँति सभीके लिये संग्राह्य एवं उपयोगी होगा।

वार्षिक-शुल्क पूर्ववत—₹ 250 पंचवर्षीय-शुल्क पूर्ववत—₹ 1250

वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ 250 के अतिरिक्त ₹ 200 देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है। इस सुविधाका लाभ उठाना चाहिये।

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005 गोरखपुरको भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रचारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् 2022) अब उपलब्ध—मँगवानेमें शीघ्रता करें।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 2278)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद मूल्य ₹ 100

पॉकेट साइज— **सजिल्द (कोड 2279)**— गीता-मूल श्लोक मूल्य ₹ 45

बँगला (**कोड 2280**), ओड़िआ (**कोड 2281**), तेलुगु (**कोड 2282**) पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण, अक्टूबर मासमें उपलब्धि सम्भावित। प्रत्येकका मूल्य ₹ 100

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।

gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005

book.gitapress.org / gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।